श्रीसत्यविजयस्मारक जैनग्रन्थमाला नं० १३.

ॐ

पूज्यपादपरमगुरु आचार्यश्रीविजयनीतिसूरीश्वरपाद-
पद्मेभ्यो नमः ।

सुविहितपूर्वाचार्यप्रणीता

॥ गुरुतत्त्वसिद्धिः ॥

प्रकाशक-

श्रीसत्यविजयस्मारकजैनग्रन्थमाला.

श्रीसत्यविजयस्मारक जैनग्रन्थमाला नं० १३.

॥ ॐ ॥

अर्हम् ।

पूज्यपादपरमगुरु आचार्यश्रीविजयनीतिसूरीश्वरपाद-

पद्मेभ्यो नमः ।

सुविहितपूर्वाचार्यप्रणीता

॥ गुरुतत्त्वसिद्धिः

संशोधक—

अनुयोगाचार्य-पन्न्यासश्रीहर्षविजयगणिशिष्य-

मुनिश्रीमानविजयः

प्रकाशक-श्रीसत्यविजयजैनग्रन्थमालायाः

कार्यवाहकः—

बालाभाइ मूलचन्द्र शाह, अमदावाद.

वीर सं० २४५४] सत्य सं० २२९ [सन्ने १९२८

प्रथमावृत्तिः, मूल्य १० आना. प्रत ५००

प्रस्तावना.

सुज्ञवाचक! जन्म जरा मरण रूप जलवडे परिपूर्ण, सर्व जगत्ने गळी जवामां समर्थ एवा लोभरूप वडवानले करीनेयुक्त, विषयरूप तरंगोए करीने चपल एवा संसारसमुद्रने विषे अनादि कालथी परिभ्रमण करता भव्यात्माओने संसारना दुःखथी मुक्त थवाने माटे तीर्थंकरोए सद्‌देव गुरु धर्म रूप तत्त्वोनुं आराधन करवानुं कहेलुं छे, अढार दूषण रहित अने बार गुणे करीने युक्त एवा अरिहंत ते देव, पंचाचारना परिपालक ते गुरु अने केवलीकथित ते धर्म ए त्रणे तत्त्वो प्रत्ये परिपूर्ण श्रद्धा ते सम्यक्त्व, ए सम्यक्त्व ज मोक्षनुं असाधारण कारण छे के जेना विना ज्ञान अने चारित्र पण यथोक्त फळ आपी शकता नथी ए त्रणे तत्त्वोनी अंदर गुरुतत्त्व मुख्य छे ? केम के जीवोने देवतत्त्व अने गुरुतत्त्वनुं स्वरूप बतावनार गुरु महाराज होय छे, श्रीपाल चरित्रमां पण कहेलुं छे के-

कारणं देवधर्म्माणां तत्त्वे भवति सद्‌गुरुः ।
स गुरुर्निन्दितो येन त्रयस्तेनावधूनिताः ॥ १ ॥

भावार्थः- देवतत्त्व अने धर्मतत्त्वनी प्राप्तिमां उत्तम गुरु महाराज कारणभूत छे केमके तेमना उपदेश विना ए तत्त्वोनुं यथार्थ ज्ञान थइ शकतु नथी, माटे जे गुरु महाराजनी निंदा करे तेणे त्रणे तत्त्वोनु अपमान कर्युं समजवुं, मुनिसुन्दरसूरीश्वरजी महाराज पण ए वातने पुष्टि आपता अध्यात्मकल्पद्रुममां लखे छे के-

तत्त्वेषु सर्वेषु गुरुः प्रधानं हितार्थधर्मा हि तदुक्तिसाध्याः
श्रयंस्तमेवेत्यपरीक्ष्य मूढ ? धर्मप्रयासान् कुरुषे वृथैव ॥ १ ॥

भावार्थः- सर्व तत्वोने विषे गुरुतत्त्व मुख्य छे, केमके आ-

ामाने हितकारक दानादिक धर्मो गुरु महाराजना उपदेशथी करी शकाय छे माटे हे मूढ ! परीक्षा कर्या विना तेज गुरुनो आश्रय करतो निरर्थक दानादिक धर्मना प्रयासो करे छे, आ उपरथी गुरुतत्त्वनी शुद्धिनी घणी आवश्यकता छे, परंतु अवसर्प्पिणी कालना दोषथी जेम पृथ्वी आदि पदार्थोमां रूप रसादिनी हाणी देखाय छे, तेम वर्तमान कालना साधुओ पण तथाप्रकारना संघयण तथा शारीरिक बळना अभावे कदाचित् अपवाद रूपे अतिचारनु सेवन करता हशे तेथी केटलाक मंदबुद्धि जीवो सिद्धान्तनी गाथा बतावीने साधुओने अवंदनिक कहे छे परंतु अपवादपदे अतिचारना सेवन करवा मात्रथी कांइ सर्वथा चारित्रनो अभाव थतो नथी, भगवती सूत्रमां पांच प्रकारना निर्ग्रन्थो कह्या छे, तेमां बकुशने उत्तर गुणना विराधक अने कुशीलने तो मूल गुण अने उत्तर गुणबन्नेना विराधक कहेल छे ए बन्ने निर्ग्रन्थो सर्व तीर्थंकरोना तीर्थपर्यंत अवस्थित होय छे तेथी देशकालने अनुसरीने सर्व शक्तिए करीने चारित्रनु पालन करनारा साधुओ पण बकुश अने कुशील पणाथी भिन्न नथी माटे वंदनिकज छे, ए वातनी ग्रंथकारे सिद्धान्तनी साक्षीयो आपीने युक्तिपूर्वक सारीरीते सिद्धि करी छे तेथी ए ग्रन्थनु नाम योजके गुरुतत्त्वसिद्धि राखेल छे. आ पुस्तकनो लगभग चउदआनी भाग सिद्धान्तना पाठोथी भरपूर छे फक्त बे आनी भाग जेटलु लखाण कर्त्तानु देखाय छे, पुस्तकनी अंतमां ग्रन्थकारे पोतानु नाम आप्यु नथी, तेथी अमे सुविहितपूर्वाचार्यप्रणीता एटलुंज नाम राख्यु छे,

आ ग्रन्थनी बे प्रतो अमने "डहेलाना उपाश्रयना भंडारमाथी मली छे, तेमां एक प्रत सात पानानी अने बीजी अगीयार पाना-

नी अने प्रायः शुद्ध हती ए बन्ने पुस्तकोने आधारे संशोधन करीने आ ग्रन्थ छपाव्यो छे, वाचकनी सरलताने माटे केटलेक स्थले टीप्पणीयो पण मुकी छे अने गुजराती वांचनारा पण एनो लाभ लेइ शके ते माटे आदिमां ग्रन्थपरिचय आप्यो छे, ग्रन्थनी अंतमां प्रतिमागुणदोषविचार नामनुं लघु पुस्तक दाखल कर्युं छे, जे वर्तमानकालमां घणु उपयोगी छे ए पुस्तकनी एकज प्रत अमने डहेलाना भंडारमांथी मली छे, तेमां बे प्रकरणो छे, एक बिंबपरीक्षाप्रकरण अने बीजु बिंबपूजास्वरूप ए पुस्तक बहुज अशुद्ध होवाथी अने बीजी आदर्श प्रत मली शकी नहि तेथी आ पुस्तक बनती रीते सुधारीने छपाव्यु छे ए बन्ने पुस्तकोनी शुद्धि तरफ पुरतुं लक्ष्य आप्यु छे, छतां क्यांइ दृष्टिदोषथी अथवा प्रेसना दोषथी भूलो रही गएली जणाय तो विद्वानोए क्षमा करवी अने सुधारीने वांचवुं अगर ए भूलो सुधारीने कोइ महाशय अमने लखी मोकलशे तो बीजी आवृत्तिमां सुधारो करीशुं इति शम् ॥

अमदावाद.
सं० १९८४ फाल्गुन
शुक्ल पञ्चमी.

लेखकः—
मुनि श्री मानविजय.

॥ श्रीमत्पंन्याससत्यविजयजीगणीनुं जीवन चरित्र ॥

१ जन्म, साधु उपदेश.

हालमां माळवा देशथी ओळखता सपादलक्ष देशमां लाडलुं नामनुं गाम हतुं. अहीं वेपार सारो चालतो हतो. दूगड गोत्रना वीरचंद नामे शेठ वसता हता, अने तेनी भार्यानुं नाम वीरमदे हतुं बंने धर्मिष्ठ हता, अने तेमने शिवराज नामनो पुत्र थयो. बालपणामां तेने धर्म प्रत्ये सारी भावना हती. एक दिवस त्यां एक मुनिराज पधार्या. तेना दर्शनथी पोताने उंडी छाप पडी, अने उपदेशथी प्रतिबोध पाम्यो. मा अने बापने दीक्षा माटे रजा आपवा बहु प्रार्थना करी, आखरे शिवराज एकनो बे थयो नहि अने तेणे माबापने समजावी रजा लीधी, पछी माबापे कह्युं के 'तुं लुंकामां (हालना स्थानकवासी) दीक्षा ले तो ते पंथना आचार्यने तेडावी सारो दीक्षा समारंभ करावुं ' त्यारे शिवराजे कह्युं के जे गच्छ सुविहित– सारी विधि पाळनार छे अने जेमां शुद्ध सामाचारी–क्रिया छे अने जेमां जिनराजनी पूजा करी शकाय छे ते गच्छमां हुं संयम लेवानो छुं. आथी माबापे तपागच्छमां पुत्रनुं मन स्थिर जोइ श्रीविजयसिंहसूरिने तेडाव्या;पुत्रे तेमनी पासेउत्सवपूर्वकदीक्षा१४वरसनीउमरेलीधी,नामसत्यविजयआपवामां आव्युं.

२ अभ्यास, क्रियोद्धार.

आ पछी शास्त्र सिद्धांतनो अभ्यास गीतार्थमुनि पासेथी करवा लाग्या, अने उत्कृष्ट क्रिया पाळवा लाग्या. आमनी क्रिया बहु विख्याती पामी अने उत्तम वैरागी पुरुष ओळखाया. पछी तेमने गच्छनी परिस्थिति जोतां जणायुं के क्रियामां शिथिलता बहु छे तो तेनो उद्धार करवानी जरूर छे, तेथी गुरु आचार्य श्री विजयसिंहसूरिनीरजालइतेनाप्रयाणअर्थेविहारकर्यो. 'रास'मां लखेछेकेः—

'श्री आचारज पूछीने, करूं क्रिया उद्धार;
निज आतम साधन करूं बहुने करुं उपगार.

श्री गुरुचरण नमी करी, करजोडी ते वारोरे;
' अनुमति जो मुजने दियो, तो करुं क्रिया उद्धारोरे. श्री
काल प्रमाणे खप खरुं, दोषी हलु कर्म दलेवारे;
तप करुं आलस मूकीने, मानव भवनुं फल लेवारे. ' श्री.
गुणवंत गुरु इणि परे कहे, ' योग्य जाणीने सुविचारोरे;
जिम सुख थाय तिम करो, निज सफल अवतारोरे. ' श्री.
धर्म मार्ग दीपाववा, पांगरीया मुनि एकाकीरे;
विचरे भारंडनी परे, शुद्ध संयमसुं दिल छाकीरे. श्री.
सहे परिषह आकरा, शोषे निज कोमल कायारे,
क्षमता समता आदरी, मेली सहु ममता मायारे. श्री.

एक दिवस श्री सत्यविजयजीए श्री विजयसिंहसूरिने कहुं के ' आपनी आज्ञा होय तो हुं क्रियोद्धार करुं. द्रव्य, क्षेत्र काल अने भाव प्रमाणे संयम पाळुं. ' आचार्ये कह्युं के ' जेम सुख थाय तेम करो (जहा सुक्खं देवाणुप्पिया)' आथी सत्यविजयजीए धर्ममार्गनेदीपाववा भारंडपक्षीनी पेठेअप्रमत्तपणेएकाकीविहार कर्यो.

३ विहार.

मेवाडना उदेपुरमां चोमासुं कर्युं. घणा लोकोने प्रतिबोध आपी धर्ममां स्थिर कर्या. छट्ठ छट्ठना तप करवा लाग्या.त्यांथी मारवाडमां आव्या. त्यां पण जैनधर्म घणाने पमाड्यो. पछी मेडता गाममां के ज्यां श्री आनंदघनजी पण ते प्रसंगे रहेता हता अने ज्यां हाल तेमनी देरी छे त्यां आवी चोमासुं कयुं. अहींथी विहार करता नागोर आवी चोमासुं कर्युं, त्यांथी जोधपुर चोमासुं कर्युं एम देश विदेश अप्रतिबंधपणे विहार करी लोकोपर परम उपकार कर्यो.

४ पन्यासपद सं. १७२९.

श्री विजयसिंहसूरिना पट्टाधीश श्री विजयप्रभसूरिए पोताना हस्तथी सोजत गाममां सं. १७२९ मां सत्यविजयजीने पन्यास पद आपवामां आव्युं हतुं. अहींथी पोते सादडीचोमासुंकर्यापछी गुजरा-

तमांअनेकस्थळेविहारकरताकरताश्रीसत्यविजयपाटण आवीपहोंच्या.

५ स्वर्गवास

क्रियानी उग्रताथी शरीर कृश थइ थइ गयुं हतुं, ब्यासी वर्षनी उमर हती अने वृद्धावस्था पूरी आवी हती तेथी पोते पाटणज वधु वखत छेल्ला भागमां रह्या. अहीं राजनगरना शेठ सोमकरण शाहना पुत्र सुरचंदशाह पंन्यासजीने खास वांदवा अर्थे आव्या हता, अने रुपैयादिक नाणावती तेमना अंग पूजता हता. कोइ श्रावको उपवासनां व्रत लेता हता, कोइ बीजां व्रतो स्वीकारता हता एम धर्मनो प्रभाव सारो देखातो हतो. अहीं संवत् (१७५६ ना) पोष सुद १२ शनिवारने सिद्धियोगे पंन्यासजी स्वर्गलोक सिधाव्या. आथी आखा नगरमां हाहाकार वर्ती रह्यो. धर्मी श्रावको सुगुरुना स्वर्गमननिमित्ते उत्सवकरताहता अने सोनारुपाना फूलउछाळताहता. आना स्मरणार्थे पाटणमां तेवखते स्थूभ–स्थंभकर्यो हतो.

अन्य विगतो (१) वनवास,

श्री सत्यविजय महाराज संबंधी हकीकत रासमांथी उपर प्रमाणे नीकळे छे परंतु बीजां स्थळोएथी जे जे विगतो प्राप्त थाय छे ते अहीं जणावीए छीए. श्री आत्मारामजीकृत जैनतत्त्वादर्शमां पृ. ६–८ मां नीचे प्रमाणे जणाव्युं छे:—

" श्री सत्यविजय गणीजी क्रिया उद्धार करी श्री आनंदघनजी साथे बहु वर्ष सुधी वनवासमां रह्या; तथा महातपस्या योगाभ्यास प्रमुख कर्युं, ज्यारे बहुज वृद्ध थइ गया. अने पगमां चालवानी शक्ति न रही त्यारे अणहिलपुर पाटणमां आवी रह्या. "

आ वातने आ रासमांथी टेको मळे छे. जुओ नीचे जणावेल छे के:—

धर्ममार्ग दीपाववा, पांगरीया मुनि एकाकी रे;
विचरे भारंडनी परे, शुद्ध संयमश्युं दिल छाकी रे.
सहे परिषह आकरा, शोषे निज कोमल काया रे;
खमता समता आदरी, मेली सहु ममता माया रे,

कीयो विहार मेवाडमां उदेपुर कियो चोमासो रे;
धर्म पमाड्यो लोकने, कीधो तिहां धर्मनो वासो रे.
छठे छठने पारणां कीधां, तप जास न पारो रे;
काया कीधी दुर्बळी, करी अरस नीरस आहारो रे.

वळी अध्यात्मरसिक वनवासी श्री आनंदघनजी महात्मा घणे भागे मेडतामां रह्या हता, एवुं लोककथा परथी जणाय छे, अने त्यां सत्यविजयजीये चोमासुं कर्युं हतुं एम रासमां आपेल छे. तेमज श्री आनंदघनजी, श्रीयशोविजयजी, श्रीविनयविजयजी, ज्ञानविमलसूरितथा श्रीमानविजयउपाध्यायआदिसमकालीनहताए निर्विवादछे.

(२) पोते कया देशना हता.

संवेगी पट्टावलीना आधारे सत्यविजयजी मेदपाट (मेवाड) देशना हता अने तेनी आ निर्वाण साक्षी पूरे छे; परंतु यतिवर्गनी पट्टावलिमां ते गंधारना शांतिदास श्रावक हता एम जे नीकळे छे ते सत्य होवानो संभव नथी.

(३) पीतवस्त्रांगीकार.

आ वखतमां स्थानकवासी (अमूर्तिपूजक) पंथ विद्यमान थयो, अने तेना साधुओ पण श्वेतवस्त्र पहेरता, तेथी श्वेतांबरीय मूर्तिपूजक अने तेमनी वच्चे भेद जाणवानुं बराबर रह्यु नहि, तेथी केटलाक साधुओए पीतवस्त्र पहेरवानुं स्वीकार्युं. यतिनी पट्टावलि जोतां श्री यशोविजयजीए काथीयां कर्यां हतां एम जणाइ आवे छे अने तेनी साथे विजयप्रभसूरिने श्री सत्यविजय गणिए न वांद्या अने सामा पडी काथीयां वस्त्र धारण कर्यां एम यतिनी बृहत् पट्टावलिमां जोवामां आवे छे. आनो निश्चय आ निर्वाणरासथी थतो नथी, परंतु श्री सत्यविजयजीनी शिष्य परंपरामांज थयेला (जुओ आगळ) पंडित वीरविजयजी आ संबंधे कंइ उल्लेख करे छे ते तपासीए, तेओ पोताना धम्मिलकुमार रास तथा चंद्रशेखर रासमां पोतानी जे प्रशस्ति आपे छे तेमां नीचे प्रमाणे दर्शाव्युं छे:-

तपगच्छ कानन कल्पतरूपम, विजयदेव सूरि रायाजी;
नाम दशोदिश जेहनुं चावुं, गुणीजन वृंदे गवायाजी.
विजयसिंहसूरि तास पटधर, कुमति मतंगज सिंहोजी;
तास शिष्य सूरिपदवी लायक, लक्षण लक्षित देहोजी. १
संघ चतुर्विध देश विदेशी, मलिया तिहां संकेतेजी;
विविध महोत्सव करता देखी, निज सूरि पदने हेतेजी.
प्राये शिथिलपणुं बहु देखी, चित्त वैरागे वासीजी;
सूरिवर आगे विनय विरागे, मननी वात प्रकाशीजी. २
'सूरिपदवी नवि लेवी स्वामी, करशुं किरिया उद्धारजी:'
कहे सूरि 'आ गादी छे तुमशिर, तुम वश सहु अणगारजी.'
एम कही स्वर्ग सधाव्या सूरिवर, संघने वात सुणावीजी;
सत्यविजय पंन्यासनी आणा, मुनिगणमां वरतावीजी. ३
संघनी साथे तेणे निज हाथे, विजयप्रभसूरि थापीजी,
गच्छनिष्ठाए उग्र विहारी, संवेगता गुण व्यापीजी.
रंगीत चेल लही जग वंदे, चैत्य धजाए लक्षीजी;
सूरि पाठक रहे सन्मुख उभा, वाचक जस तस पक्षीजी. ४
मुनि सवेगी गृही निर्वेदी, त्रीजो संवेग पाखीजी;
शिव मारग ए त्रणे कहीए, इहां सिद्धांत छे साखीजी.
आर्यसुहस्तिसूरि जेम वंदे, आर्यमहागिरि देखीजी;
दो तिन पाट रही मरजादा, पण कलिजुगता विशेखीजी. ५
ग्रहील जलासी जनतापासी, नृपमंत्री पण भलीयांजी.

अर्थ—तपगच्छ रुपी वनमां कल्पवृक्षनी उपमा पामेल श्री विजयदेवसूरि थया के जेनुं चावु (मराठी 'चांगलुं'—सारुं) सुंदर नाम दशे दिशाए गुणीजनना समूहे गायुं छे; तेना पट्टधर, कुमति रुपी हाथीओमां सिंह जेवा विजयसिंह सूरि थया अने तेना शिष्य, लक्षणथी लक्षित-अंकित थयेल देहवाळा (सत्यविजय) सूरिनी पदवीने लायक थया.

दशे दिशाएथी चतुर्विध संघ आगळथी संकेत प्रमाणे तेने सूरिपद आपवा भेगो मळयो. (श्री सत्यविजय) पोताने सूरिपद आपवा माटे आ संघने जुदी जुदी जातना महोत्सव करता जोइ अने वैराग्यवाळु पोतानुं चित्त संस्कारित थयेलुं होवाथी शासनमां प्रायःशिथिलपणुं देखी (श्री विजयसिंह) सूरि पासे विनय अने वैराग्यथी पोताना मननी वात प्रकाशित करी के 'हे स्वामिन् मारे सूरि पदवी लेवी नथी. मारी इच्छा तो क्रिया उद्धार करवानी छे तो ते करीश.'—त्यारे सूरिए कह्युं के "आ गादी—गच्छगादी तमारे शिरे छे अने तमारे वश तमारी आज्ञा नीचे सौ मुनिपरिवार छे. आम कही ते सूरिवर स्वर्गे सिधाव्या, अने तेमणे कहेलुं कथनसंघनेसुणावतांसत्यविजयपंन्यासनीआज्ञामुनिगणमांप्रवर्ती. ३

श्री सत्यविजयजीए संघनी साथे पोताने हाथे रही विजयप्रभने सूरिपदपर स्थाप्या, अने गच्छनिष्ठा राखी उग्रविहार करी क्रियोद्धारथी संवेगनो सत्य गुण व्याप्त कर्यो. जेवी रीते छेटेथी ध्वजा देखीने लोको चैत्यजिनालय होवुं जोइए, एवुं अनुमान करी हाथ जोडे छे—वंदना करे छे, तेवीज रीते सत्यविजय गणिए रंगित—रंगेला (पीत) वस्त्र अंगीकार करेलां होवाथी तेने तेमज तेना परिवारना साधुओने ते वस्त्रो उपरथी तेओ खरा संवेगी होवा जोइए एम अनुमान करी लोको तेमने वंदना करे छे आ श्री सत्यविजयजी एवा प्रभावक हता के तेनी समक्ष सूरि (श्री विजयप्रभसूरि), पाटको उभा रहेता हता—मान आपता हता, अने तेना पक्षमां—क्रियोद्धारना पक्षमां वाचक श्री जश (यशोविजयजी) हता.

सिद्धांतमां ए वातनी साक्षी पूरे छे के संवेगी मुनि, निर्वेदी गृहस्थ, अने संवेगपक्षी (संवेगीने अनुमोदनारा)—आ त्रण शिवमार्ग लइ शकनारा छे; परंतु (कलियुगनुं) माहात्म्य कंइ ओर छे ! जुओ ? आर्यसुहस्ति पोते सूरि हता छतां, आर्य महागिरि

सूरि न होवा छतां ते उग्रक्रियाधारी होवाथी तेने वंदना करता हता, अने तेवो क्रम बे त्रण पाट सुधी रह्यो पण पछी न रह्यो कारण के कलियुगनी विशेषता छे, आ माटे दृष्टांत आपे छे. जेम आखुं नगर घेला बनावनारुं जल पीवाथी गांडु थइ गयुं अने राजा अने प्रधान के जेओ ते जल पीधु न होवाथी डाह्या रह्या हता तेओने पण ते गांडाओमां भळवुं पड्युं (कारण तेम न करे तो गांडा तेओने त्रास आप्या वगर न रहे.) तेम कलियुग आवतो गयो तेम क्रिया ओछी थती गइ, अने क्रिया प्रत्ये जोइए तेवुं मान पणनरह्युं,तेथीक्रियापरायणनेक्रियानकरनारासाथेचलावीलेवुं पड्युं.

(४) क्रियाउद्धारमां श्री यशोविजयजीनी सहाय.

मूळ श्री जिनहर्षरचित श्री सत्यविजयजीना रासमां क्रियोद्धार करवामां कोइपण सहायकर्त्ता हतुं एम दर्शावेल नथी, परंतु उपर जणावेल श्री वीरविजयजी पंडिते आपेली प्रशस्तिमां ' वाचक जश तस पक्षीजी ' एम चोख्खुं लखेल छे. आ संबंधमां वीरविजयजी १९ मा सैकामां थइ गया तेना पहेलानो समय जोइए तो विशेष समर्थन मळेछे,केश्रीयशोविजयजीए सहाय आपी छे. श्री यशोविजयजी पोते ३५० गाथाना स्तवनने अंते लखे छे केः—

तास पाटे विजयदेवसूरीसरु, पाट तस गुरु विजयसिंह धोरी:
जास हित शीखथी मार्ग ए अनुसर्यो,जेहथी सवीटली कुमति चोरी

आनापर सं.१८३०मांटबोकरनारश्रीपद्मविजयजीअर्थ पूरे छे केः—

" वळी तेने पाटे श्री विजयदेवसूरि थया, तथा तेमना पाटे श्री विजयसिंहसूरि ते गच्छनो भार वहेवाने वृषभ समान धोरी थया जेमनी हितशीख-आज्ञा पामीने में ए संवेगमार्ग आदर्यो, एटले ए भावने श्री जशोविजयजी उपाध्याये पण एओनी आज्ञा पामीने क्रियाउद्धार कर्यो, तथा श्री विजयसिंहसूरिना शिष्य अनेक हता तेमां सत्तर शिष्य सरस्वती बिरुदधारी हता ते सर्वमां महोटा शिष्य पंडित श्री सत्यविजयजी गणी हता. तेमणे(विजयसिं-

हसूरिनी) आज्ञा पामी क्रियाउद्धार कीधो ते माटे एम कह्युं जे मार्ग ए अनुसर्यो-ए संवेग मार्गआदर्यो, जे आदरवाथकी तीर्थंकर अदत्त गुरु अदत्त, इत्यादि कुमति कदाग्रहरूप चोरी टली गइ. "

(९) समकालीन विद्वानो.

श्री सत्यविजयजी पंन्यासनो समय बहु झळहळतो छे अने ते समयमां जे जे पारमार्थिक प्रतिभाशाली पुरुषो थया छे तेथी जैनसमाजने अद्भूत धर्मलाभ मळ्यो छे. आ वखते विद्वानोनो समूह जैनोमां हतो, जेमांना केटलाक नामो आपीए छीए. श्री वाचकवर उपाध्यायश्री यशोविजय, विनयविजय उपाध्याय (के जेनुं चरित्र 'नयकर्णिका'मां जुओ), अध्यात्मरसिक वनवासी श्री आनंदघनजी, उपाध्याय श्री मानविजयगणि ('धर्मसंग्रह' ना रचनार), श्री ज्ञानविमलसूरि (के जेनो 'विमल'पक्ष हजु सुधी विद्यमान छे.), धर्ममंदिरगणि, रामविजयजी, लावण्यसुंदरआदि आ बधाए धर्मसाहित्य गुजराती भाषामां मूकी साहित्यधारा घणा वेग पूर्वक टकावी राखी छे. प्रख्यात दिगंबर कवि बनारसीदास (समयसारना रचनार) पण आ समये विद्यमान हता. तेमज अन्य दर्शनोमां रामदास, तुकारामादि हता के जेमणे भक्ति प्राधान्य अपूर्व संगीत गाइ समाज सुधारणा अने राष्ट्रसुस्थिति माटे प्रबळ प्रयत्न कर्यो छे, अने गुजरातमां कवि प्रेमानंद, शामळ अने अखाए पोतानी काव्यगिराथी गुजरातने गजावी छे.

रासकार श्री जिनहर्ष.

आ रास तेमणे सं. १७५६ ना महा सुद १० मी रचेल छे. पोते खरतरगच्छना हतां छतां तपगच्छना पंन्यास प्रवर श्री सत्यविजयजीनो रास पोतेरच्यो छे, ए परथी गच्छभेदनी टुंकी दृष्टि ते वखते नहोती एमजणायछे. तेओनी वंशपरंपरा नीचे प्रमाणे हती.

×जिनचंद्रसूरि (खरतर गच्छ ६५ मी पाटे.)

| शांतिहर्षगणि (वाचक) | जिनहर्ष

॥ ग्रन्थपरिचय ॥

प्रारंभमां ग्रन्थकार चोत्रीस अतिशयरूप अद्भुत ऋद्धि-युक्त चरमतीर्थंकर वर्द्धमानस्वामीने, शासनप्रभावक सुधर्मा-स्वामी आदि आचार्योने, जीवाजीवादि पदार्थोना स्वरूपने बतावनार जिनागमोने, तथा सरस्वतीने नमस्कार करीने जिनागमोनी सुंदर युक्तियो वडे गुरुतत्त्वसिद्धि नामक ग्रन्थने कहेवानी शरुआत करे छे—

आ कलिकालमां केटलाक धर्मार्थी जीवो पण केटलीक सिद्धान्तनी गाथाओनो अभ्यास करीने तेना अभ्यासथीज दुर्दैव-वशात् विपरीत मतिवाळा थएला आवी रीते कहे छे के-वर्तमान काळमां जे साधुओ देशकालने अनुसरीने चारित्र पाळता होय ते पण वंदन करवा योग्य नथी ? जेने माटे आवश्यकनिर्युक्तिमां कह्युं छे के-

पासत्थो १ ओसन्नो २ होइ कुसीलो ३ तहेव संसत्तो ४ ।
अहच्छंदो ५ वि य एए अवंदणिज्जा जिणमयम्मि ॥ १ ॥

भावार्थः-ज्ञान दर्शन अने चारित्रनी पासे रहे पण तेओनुं पालन करे नहि ते पासत्थो अथवा मिथ्यात्वादिकना पाशमां रहे ते पासत्थो, क्रिया मार्गमां जे शिथील थयो होय ते अवसन्न, जेनो आचार निन्दनीय होय ते कुशील जेने विषे केटलाक मूल अने उत्तरगुणो दोषमिश्रित थएला होय ते संसक्त, उत्सूत्रने आचरतो थको उत्सूत्रनी प्ररूपणा करे ते यथाछंद आ पांच कुगुरुओ जिन मतने विषे अवंदनिक छे.

जेम अपवित्र स्थानमां पडेली सुगंधमय चंपकपुष्पनी माला मस्तक-पर धारण कराती नथी, तेम पासत्था आदिक स्थानमां वर्तता मुनि-पण अपूजनिक छे, ए प्रमाणे आवश्यकनिर्युक्तिनो पाठ आपी-ने वंदननो निषेध करे छे, तेमने ग्रन्थकार पुछेछे के- वर्तमान काळना साधुओने शुं तमे पासत्था अवसन्ना कुशील संसक्त के यथाच्छन्द मानो छो ? सर्वथी तो पासत्था कही शकाशे नहि, केमके सर्वथी पासत्थानुं लक्षण आवश्यक निर्युक्तिमां आ प्रमाणे कह्यु छे—

" सो पासत्थो दुविहो सव्वे देसे य होइ नायव्वो ।
सव्वंमि नाणदंसणचरणाणं जो उ पासंमि ॥ १ ॥

भावार्थः—ते पासत्थाना बे भेद छे, सर्वथी अने देशथी, जे ज्ञान दर्शन अने चारित्रनी पासे रहे पण तेओना आचारनुं बीलकुल पालन करे नहि ते सर्वथा पासत्थो जाणवो, वृद्धपुरुषो पण पा-सत्थाना लक्षणो आ प्रमाणे बतावे छे—रात्रीए राखेली वस्तु खाय, निर्वाह थइ जतो होय छतां पोताने माटे करेली वस्तु ग्रहण करे, जळ फळ फूल आदि सर्व सचित्त वस्तुओ वापरे, हम्मेशां बे त्रण वार भोजन करे, विगइ लवंग एलची पान सोपारी विगेरे वापरे, श-य्या जोडा घोडागाडी तांबाना पात्रो वापरे, जरूर पडे त्यारे रजोह-रण मुखवस्त्रिका देखावमाटे धारण करे, एकला फरे, स्वच्छन्द पणे ज्यां त्यां उभा रहे, देरासर तथा मठादिमां रहे, पूजानो आरंभ करे, हम्मेशां एकस्थाने रहे, देवद्रव्यनो उपभोग करे, जिनालय पौषधशाला विगेरे करावे, स्नान उद्वर्तन विलेपन आदि शरीरनी शोभा करे, द्रव्यसंग्रह करे, ग्राम कुलादिप्रत्ये ममत्वभाव राखे, स्त्रीओनो परिचय करे, नरकगतिना कारणरूप ज्योतिष्-नि-

मित्त-वैदक-मंत्रादिना प्रयोगो करे, सुविहित साधुओ प्रत्ये द्वेष राखे, तेमनी पासे धर्मकार्य करवानो निषेध करे, शासननी प्रभावना ने माटे बीजाना दोषो प्रगट करे, लोभने माटे गृहस्थनी स्तुति करे, जिनप्रतिमानो क्रय-विक्रय-उच्चाटन-आदि क्षुद्र कार्यो करे, सर्व लोकोने राजी राखवाने माटे मुहूर्त्त विगेरे आपे, शालामां अथवा गृहस्थने घेर यज्ञो विगेरे करावे, सांसारिक फळने माटे यक्षादि देवोनी पूजा करवानुं कहीने मिथ्यात्वनी वृद्धि करे इत्यादि सर्व पासत्थाना लक्षणो जाणवा, वर्त्तमानकाळना सर्व साधुओ आवा लक्षणवाळा नथी, केमके केटलाक साधुओ तो वर्तमानकाले पण सर्वशक्तिए करीने चारित्रने विषे उद्यमवंत देखाय छे, माटे सर्वथी पासत्था कही शकाशे नही,हवे देशथी जो पासत्था कहेता हो तो तेनुं लक्षण बताओ, त्यारे प्रतिवादी कहे छे केजे साधुओ विना कारणे शय्यातरपिंड-सामो लावेलो आहार, राज पिंड-नित्यपिंड-अग्रपिंड वापरे, कुलनी निश्राए विचरे, कारण सिवाय स्थापनाकुलोमां प्रवेश करे, संखडी (जमणवार)मां जोवा जाय तेमज स्तुति करे, तेने देशथी पासत्थो जाणवो, ए प्रमाणे आवश्यक निर्युक्तिमां कह्युं छे, त्यां शास्त्रकार कहे छे केउपरोक्त सर्व लक्षणो जेनामां घटता होय, तेने तमे देशथी पासत्थो कहो छो, के भिन्न भिन्न लक्षणवाळाने ? भिन्न भिन्न लक्षण वाळाने तो देशथी पासत्थो कहीशकासे नही केमके- स्थूलिभद्रमहाराज कोशाने घेर चतुर्मास रह्या अने त्यां चारे मास सुधी तेना घरनो आहार लीधो जेथी शय्यातरपिंडनो दोष लाग्यो छे तोपण शास्त्रकारे तेमने देशपासत्था कह्या नथी.

जेने माटे आवश्यक सूत्रनी म्होटी टीकामां योगसंग्रहने विषे कह्यु छे-"थूलभद्दसामी तत्थेव गणिआघरे भिक्खं गेण्हइ"

इति हवे जो सामुदायिक पक्ष ग्रहण करता होतो, वर्तमान साधुओमां पण केटलाक साधुओने विषे शय्यातर अभ्याहृत राजपिंड ग्रहणादिरूप दोषनो अभाव होवाथी, देशथी पासत्था पण केवी रीते कही शकाय ? एवी रीते अवसन्नादिपणानो पण निषेध जाणवो, शास्त्रकार प्रतिवादीने शिखामण आपता कहे छे के-हे सौम्य ? सम्यक् सिद्धान्तना रहस्यने नहि जाणता छतां पासत्था आदिना दोषोनुं आरोपण करीने वर्तमान साधुओने तुं फोगट शामाटे दूषित करे छे ? जेने माटे निशीथसूत्रमां. कह्युं छे के—

संतगुणछायणा खलु परपरिवाओ अ होइ अलियं च ।
धम्मे अरज्जमाणो साहु पउसे य संसारो ॥ १ ॥

भावार्थः– विद्यमान गुणोने ढांकवाथी अछता दोषो प्रगट करवाथी असत्य बोलवाथी धर्मने विषे अप्रेम उत्पन्न करवाथी साधु प्रत्ये द्वेष राखवाथी संसारनी वृद्धि थाय छे, माटे जो मोक्षनी अभिलाषा होय तो मात्सर्यता दूर करीने सम्यक् प्रकारे तत्वने सांभल ! शास्त्रमां पुलाक बकुश कुशोल निर्ग्रन्थ स्नातक ए पांच प्रकारना निर्ग्रन्थो कह्या छे-संयमरूपसारनी अपेक्षाए जेनुं चारित्र निःसार होयते पुलाक, उपकरण अने शरीरने शुद्ध राखनारा परिवार प्रमुख ऋद्धि यशने इच्छनारा अने सुखनो आश्रय करनारा छेद योग्य सातिचार चारित्रवाला निर्ग्रन्थो ने बकुश कह्या छे.

कुत्सित निन्दनीय जेनुं चारित्र होय ते कुशील पुरुषवेद स्त्री वेद नपुंसकवेद हास्य रति अरति भय शोक दुगंछा मिथ्यात्व क्रोध मान माया लोभ आ १४ प्रकारनो मोहनीय कर्मनो अभ्यन्तर ग्रन्थीनो जेमणे क्षय कर्यो होय ते निर्ग्रन्थ, ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय अने अंतराय ए चार घातिकर्म रूप मलना समूह

थी जे रहित थया होयते स्नातक तेमां बकुश अने कुशील तो सर्व तीर्थकरोना तीर्थपर्यंत वर्तता होय छे, तेमां पंचमहाव्रत रूप मूलगुण अने दशविध प्रत्याख्यानरूप उत्तरगुण एटले मूलगुण अने उत्तरगुणविषयक चारित्रनी विराधना पुलाकने विषे होय छे, आचारनी विरुद्ध प्रवृत्ति करवी ते प्रतिसेवना ए प्रतिसेवना कुशीलने विषे होय छे, उत्तर गुणविषयक विराधना बकुशनेविषे होयछे, बाकीना निर्ग्रन्थ अने स्नातक तो प्रतिसेवना रहित होय छे, बकुशनां बे भेद छे उपकरणबकुश अने शरीरबकुश तेमां जे उपकरणबकुश होय ते शेषकालमां पण वस्त्रो धोवे अने विभूषा माटे बारीक वस्त्रो वापरे, तथा खरपाषाणथी घसेला सुंवाला पत्थरथी घसीने सुकोमल करेला अने वेलतेल लगाडीने तेजस्वी बनावेला पात्र अने दांडा विगेरे शोभाने माटे धारण करे घणा उपकरणोनो संग्रह करे ते उपकरणबकुश, अने जे शरीरबकुश होय ते अशुचि नेत्रविकारादि कारण विना हाथ—पग—नख—मुखादि शरीरना अवयवोने साफ करे, पांडित्यतपादि करीने यश नी इच्छा राखे यश थए छते संतोष पामे, सुखशील थयेलो अहोरात्रि धर्मानुष्ठानने विषे उद्यम न करे, तैलादिवडे पगे मर्दन करे. वाल कापे, तेनो परिवार पण असंयमवान् अने वस्त्र पात्रादिने विषे ममत्वभाववालो होय छे ते शरीरब श कहेवाय.

उपकरणबकुश अने शरीरबकुश ते बन्नेनां पांच पांच भेदो छे— आ कार्य साधुने करवा योग्य नथी एम जाणता छतां जो करे तो ते आभोगबकुश १ अजाण पणे करे तो ते अनाभोग बकुश२ लोकोना जाणवामां न आवे एवी रीते उत्तर गुणने विषे अतिचारनुं सेवन करे ते संवृतबकुश ३ प्रकटपणे अतिचार-

नुं सेवन करे ते असंवृतबकुश ४ अने नेत्र नासिका मुखादिना मळने साफ करे तो ते यथासूक्ष्मबकुश ५

कुशीलना बे भेद छे प्रतिसेवनाकुशील अने कषायकुशील विराधकपणाए करीने जे कुशील ते प्रतिसेवनाकुशील अने संज्वलनना उदयरूप कषायोए करीने कुशील ते कषायकुशील, ते प्रतिसेवना कुशीलना पांच भेद-जे ज्ञाननो आश्रय करीने ज्ञाननी विराधना करे ते ज्ञानप्रतिसेवनाकुशील १ ए प्रकारे दर्शननी विराधना करे ते दर्शनप्रतिसेवनाकुशील २, चारित्रनी विराधना करे ते चारित्र प्रतिसेवनाकुशील ३, तपनी विराधना करे ते तपकुशील ४, आ तपस्वी छे एवी प्रशंसा करवाथी तुष्टमान थाय ते यथासूक्ष्मप्रतिसेवना कुशील ५,

कषाय कुशीलना पांच भेद छे-संज्वलनकषायना उदयवाळो थइ ने ज्ञाननी विराधना करे ते ज्ञानकषायकुशील १ एवी रीते दर्शननी विराधना करे ते दर्शनकषायकुशील २ तपनी विराधना करे ते तपकषायकुशील ३ कषायाविष्ट थइने शाप आपे ते चारित्रकषायकुशील ४ मनथी क्रोधादि कषायोनुं सेवन करे ते यथा सूक्ष्मकषायकुशील ५,

आ बाबत उत्तराध्ययन सूत्रना ६ अध्ययननी म्होटी टीकामां विस्तारथी कहेली छे, प्रतिसेवनाकुशील मूलगुणनी विराधना करतो थको केटलाक उत्तर गुणोनी पण विराधना करे छे, तेने माटे भगवतीसूत्रमां कह्युं छे के-

बउसेणं पुच्छा ? गोयमा ? पडिसेवए होज्जा, अप्पडिसेवए होज्जा ! जदि पडिसेवए होज्जा, किं मूलगुणपडिसेवए होज्जा, उत्तरगुणपडिसेवए होज्जा ? गोयमा नो मुलगुणपडिसेवए होज्जा, उत्तरगुणपडिसेवए होज्जा, तथा पडिसेवणाकुसीले जहा पुलाए, मूलगुणपडिसेवए होज्जा उत्तरगुणपडिसेवए होज्जा ॥ भगवतीसूत्रशतक, २५ उद्देशो ६

भावार्थः– बकुशनो प्रश्न– हे गौतम ! बकुश विराधक पण होय अने अविराधक पण होय, जो विराधक होय तो मूळगुण विराधक होय के उत्तरगुण विराधक ? हे गौतम! मूळ गुणविराधक न होय, पण उत्तर गुण विराधक होय, तथा प्रतिसेवना कुशील तो पुलाकनी माफक मूळ गुणविराधक अने उत्तर गुणविराधक होय छे, अहिंया मूळ गुण अने उत्तर गुणना विराधकपणाने विषे पण पुलाकादि मुनिओनुं जे निर्ग्रन्थपणु कह्यु छे, ते जघन्य जघन्यतर अने उत्कृष्ट उत्कृष्टतरभेद वाळा संयमस्थानोनी अपेक्षाए जाणवुं माटे पासत्था आदिना लक्षणो तपासवाना क्लेशे करीने सर्युं ! श्री जिनवल्लभसूरि पण द्वादशकुलकप्रकरणमां लखे छे के– कदाचित् कालादिकना दोषथी तेवा गुणसंपन्न साधुओ न देखाता होय तेथी सर्वत्र तेवा साधुओनो अभाव छे एवो अविश्वास तो नज राखवो, केमके जे साधुओ कदाग्रह रूप कलंकथी रहीत होय अने सर्वशक्तिए करी आगमने अनुसारे चारित्रने विषे उद्यमवंत होय तेवा साधुओने विशुद्ध चारित्र

वान् जाणवा ए प्रमाणे अरिहंतना सिद्धान्तनेविषे कह्यु छे. वली व्यवहारसूत्रना पहेला उद्देशामां पण कह्यु छे के-

"चोअग! छक्कायाणं तु संजमे जोऽणु धावए ताव (जाव)
मूलगुणउत्तरगुणो दोण्णि वि अणुधावए ताव ॥ १ ॥

भावार्थः- हे प्ररक ? ज्यां सुधी पृथ्वी अप् तेज वायु वनस्पति अने त्रस ए छक्काय जीवो ने विषे संयमना प्रबन्धे करीने वर्ते छे एटले छक्काय जीवोनी रक्षाकरे छे त्यां सुधी चारित्रना मूल अने उत्तरगुणो होय छे माटे देशकालने अनुसरीने चारित्रने विषे उद्यमवंत साधुओ बकुश अने कुशीलपणाथी भिन्न नथी माटे शास्त्रानुसार वंदनीकज छे एम सूचववानो आ ग्रन्थनो मुख्य उद्देश छे. इत्यलं विस्तरेण ॥

卐

अमदावाद.
सं० १९८४ फाल्गुन
शुक्ल पञ्चमी,

लेखकः—
मुनि श्री मानविजय.

श्री सत्यविजय जैनग्रन्थमाला नं १३

अर्हम् ।

पूज्यपादपरमगुरु आचार्यश्री विजयनीतिसूरीश्वरपाद-
पद्मेभ्यो नमः ।

सुविहितपूर्वाचार्यप्रणीता—

॥ गुरुतत्त्वसिद्धिः ॥

॥ नमः श्रीश्रुतज्ञानाय ॥

श्रीवर्द्धमानप्रभुमद्भुतर्द्धिं,
श्रीमत्सुधर्मादिगुरून् गिरं च ।
जिनागमांश्चाप्यभिवन्द्य हृद्य-
युक्त्या ब्रुवे श्रीगुरुतत्त्वसिद्धिम् ॥१॥

इह केचिद्धर्मार्थिनोऽपि काश्चित्सिद्धान्तगाथाः केषाश्चित्पार्श्वेऽधीत्य तदध्ययनादेव दुर्दैववशाज्जातमतिविपर्यासा एवं ब्रुवते, साम्प्रतं ये साधवः कालोचितयतनया यतमाना दृश्यन्ते, तेऽपि न वन्द्याः। यतः श्रीआवश्यके-

"पासत्थो१ ओसन्नो२ होइ कुसीलो३ तहेव संसत्तो४ ।
अहच्छंदो५ वि य एए अवंदणिज्जा जिणमयम्मि॥१॥"

---

१ व्याख्या—किलेयमन्यकर्तृकी गाथा तथाऽपि सोपयोगा चेति व्याख्यायते । तत्र पार्श्वस्थः दर्शनादीनां पार्श्वे तिष्ठतीति पार्श्वस्थः,अथवा मिथ्यात्वादयो बन्धहेतवः पाशाः पाशेषु तिष्ठतीति पाशस्थः,-

'सो पासत्थो सव्वे दुविहो देसे य होइ णायव्वो । सव्वंमि णाणदंसणचरणाणं जो उ पासंमि ॥ १ ॥ देसंमि य पासत्थो सिज्जायरऽभिहड रायपिंडं वा । णिययं च अग्गपिंडं भुंजति णिक्कारणेणं च ॥२॥ कुलणिस्साए विहरइ ठवणकुलाणि य अकारणे विसइ । संखडिपलोयणाए गच्छइ तह संथवं कुणई ॥३॥ अवसन्नः—सामाचार्यासेवने अवसन्नवदवसन्नः, ओसन्नोऽवि य दुविहो सव्वे देसे य तत्थ सव्वंमि । उउबद्धपीढफलगो ठवियगभोई य णायव्वो ॥ १ ॥' देशावसन्नस्तु—'आवस्सगसज्झाए पडिलेहणझाणभिक्खऽभत्तट्ठे । आगमणे णिग्गमणे ठाणे य णिसीयणतुयट्टे ॥ १ ॥ आवस्सयाइयाइं ण करे, करेइ अहवावि हीणमहियाइं । गुरुवयण बलाइ तहा भणिओ ऐसो य ओसन्नो ॥२॥ गोणो जहा वलंतो भंजइ समिलं तु सोऽवि एमेव । गुरुवयणं अकरेंतो बलाइ कुणई व उस्सूण्णो ॥३॥ 'भवति कुशीलः'

---

१ स पार्श्वस्थो द्विविधः—सर्वस्मिन् देशे च भवति ज्ञातव्यः। सर्वस्मिन् ज्ञानदर्शनचरणानां यस्तु पार्श्वे ॥१॥ देशे च पार्श्वस्थः शय्यातराभ्याहृते राजपिण्डं वा । नित्यं चाग्रपिण्डं भुनक्ति निष्कारणेन च ॥२॥ कुलनिश्रया विहरति स्थापनाकुलानि चाकारणे विशति । संखडीप्रलोकनया गच्छति तथा संस्तवं करोति ॥३॥ अवसन्नोऽपि च द्विविधः सर्वस्मिन् देशे च तत्र सर्वस्मिन् । ऋतुबद्धपीठफलकः स्थापितभोजी च ज्ञातव्यः ॥१॥ आवश्यकस्वाध्याययोः प्रतिलेखनायां ध्याने भिक्षायामभक्तार्थे । आगमने निर्गमने स्थाने च निषीदने त्वग्वर्त्तने ॥१॥ आवश्यकादीनि न करोति अथवाऽपि करोति हीनाधिकानि (वा) । गुरुवचनबलात्तथा भणित एष चावसन्नः॥२॥गौर्यथा वलगन् भनक्ति समिलां तु सोऽप्येवमेव। गुरुवचनमकुर्वन् बलात् करोति वावसन्नः ॥३॥

कुत्सितं शीलमस्येति कुशीलः,–'तिविहो होइ कुसीलो णाणे तह दंसणे चरित्ते य । एसो अवंदणिज्जो पन्नत्तो वीयरागेहिं ॥ १ ॥ णाणे णाणायारं जो उ विराहेइ कालमाईयं । दंसणे दंसणायारं चरणकुसीलो इमो होइ ॥ २ ॥ कोउय भूईकम्मे पसिणापसिणे णिमित्तमाजीवे । कक्ककुरुए य लक्खण उवजीवइ विज्जमंताई ॥३॥ सोभग्गाइणिमित्तं परेसि ण्हवणाइ कोउयं भणियं । जरियाइ भूइदाणं भूईकम्मं विणिद्दिट्ठं ॥४॥ सुविणयविज्जाकहियं आइंखणिघंटियाइकहियं वा । जं सासइ अन्नेसिं पसिणापसिणं हवइ एयं ॥५॥ तीयाइभावकहणं होइ णिमित्तं इमं तु आजीवं । जाइकुलसिप्पकम्मे तवगणसुत्ताइ सत्तविहं ॥६॥ कक्ककुरुगा य माया णियडीए जं भणंति तं भणियं । थीलक्खणाइ लक्खण विज्जामंताइया पयडा ॥ ७ ॥' 'तथैव संसक्त' इति यथा पार्श्वस्थादयोऽवन्द्यास्तथाऽयमपि संसक्तवत् संसक्तः, तं पार्श्वस्थादिकं तपस्विनं वाऽऽसाद्य

---

१ त्रिविधो भवति कुशीलो ज्ञाने तथा दर्शने चारित्रे च । एषोऽवन्दनीयः प्रज्ञप्तो वीतरागैः ॥ १ ॥ ज्ञाने ज्ञानाचारं यस्तु विराधयति कालादिकम् । दर्शने दर्शनाचारं चरणकुशीलोऽयं भवति ॥२॥ कौतुकं भूतिकर्म प्रश्नाप्रश्नं निमित्तमाजीवम् । कल्ककुहुकश्च लक्षणं उपजीवति विद्यामन्त्रादीन् ॥३॥ सौभाग्यादिनिमित्तं परेषां स्नपनादि कौतुकं भणितम् । ज्वरितादये भूतिदानं भूतिकर्म विनिर्दिष्टम् ॥४॥ स्वप्नविद्याकथितमाइङ्खिनीघण्टिकादिकथितं वा । यत् शास्ति अन्येभ्यः प्रश्नाप्रश्नं भवत्येतत् ॥५॥ अतीतादिभावकथनं भवति निमित्तमिदं त्वाजीवनम् । जातिकुलशिल्पकर्माणि तपोगणसूत्राणि सप्तविधम् ॥६॥ कल्ककुहुका च माया निकृत्या यद्भणन्ति तद्भणितम् । स्त्रीलक्षणादि लक्षणं विद्यामन्त्रादिकाः प्रकटाः ॥७॥

सन्निहितदोषगुण इत्यर्थः, आह च-"संसत्तो य इदाणीं सो पुण गोभत्तलंदए चेव । उचिट्ठमणुचिट्ठं जं किंची छुब्भई सव्वं ॥१॥ एमेव य मूलुत्तरदोसा य गुणा य जत्तिया केइ। ते तम्मिवि सन्निहिया संसत्तो भण्णई तम्हा ॥२॥ रायविदूसगमाई अहवावि णडो जहा उ बहुरूवो । अहवा वि मेलगो जो हलिद्दरागाइ बहुवण्णो ॥३॥ एमेव जारिसेणं सुद्धमसुद्धेण वाऽवि संमिलइ । तारिसओ चिय होति संसत्तो भण्णई तम्हा ॥४॥ सो दुविकप्पो भणिओ जिणेहिं जियरागदोसमोहेहिं । एगो उ संकिलिट्ठो असंकिलिट्ठो तहा अण्णो ॥५॥ पंचासवप्पवत्तो जो खलु तिहि गारवेहि पडिबद्धो ।इत्थिगिहिसंकिलिट्ठो संसत्तो संकिलिट्ठो उ।६।पासत्थाईएसुं संविग्गेसुं च जत्थ मिलती उ।तहि तारिसओ भवई पियधम्मो अहव इयरो उ ।७।एसो ऽसंक्लिष्टः, 'यथाछन्दोऽपि च' यथाछन्दः-यथेच्छयैवागमनिरपेक्षं प्रवर्तते यः स यथाछन्दोऽभिधीयते, उक्तं च-"उस्सुत्तमायरंतो उस्सुत्तं चेव पन्नवेमाणो । एसो उ अहाच्छंदो

---

१ संसक्तश्चेदानीं स पुनर्गोभक्तलन्दके चैव । उच्छिष्टमनुच्छिष्टं यत्किञ्चित् क्षिप्यते सर्वम् ॥ १ ॥ एवमेव च मूलोत्तरदोषाश्च गुणाश्च यावन्तः केचित् । ते तस्मिन् सन्निहिताः संसक्तो भण्यते तस्मात् ॥२॥ राजविदूषकादयोऽथवाऽपि नटो यथा तु बहुरूपः । अथवाऽपि मेलको यो हरिद्रारागादिः बहुवर्णः ॥३॥ एवमेव यादृशेन शुद्धेनाशुद्धेन वाऽपि संवसति । तादृश एव भवति संसक्तो भण्यते तस्मात् ॥४॥ स द्विविकल्पो भणितो जिनैर्जितरागद्वेषमोहैः । एकस्तु संक्लिष्टोऽसंक्लिष्टस्तथाऽन्यः ॥५॥ पञ्चाश्रवप्रवृत्तो यः खलु त्रिभिर्गौरवैः प्रतिबद्धः । स्त्रीगृहिभिः संक्लिष्टः संसक्तः संक्लिष्टः स तु ॥६॥ पार्श्वस्थादिकेषु संविग्नेषु च यत्र मिलति तु । तत्र तादृशो भवति प्रियधर्मा अथवा इतरस्तु ॥७॥ उत्सूत्रमाचरन् उत्सूत्रमेव

तत्रैव—

असुइ ठाणे पडिआ चंपकमाला न कीरइ सीसे।
पासत्थाइठाणेसु वट्टमाणा तह अपुज्जा ॥२॥

अत्रोत्तरं—श्रीउपदेशमालायां।

पासत्थो१सन्न२कुसील३नीअ४संसत्तजण५महाछंदं ६।
नाऊण तं सुविहिया सव्वपयत्तेण वज्जंति ॥१॥

ननु साम्प्रतीनाः साधवः किं भवता पार्श्वस्था उच्यन्ते, अवसन्ना वा किं वा कुशीलाः, उत संसक्ता यद्वा यथाच्छन्दाः, तत्र यदि पार्श्वस्थास्तदा सर्वतो देशतो वा, न तावत्सर्वतः तल्लक्षणं हि श्रीआवश्यके एवं—

"सो पासत्थो दुविहो सव्वे देसे अ होइ नायव्वो।
सव्वंमि नाणदंसण--चरणाणं जो उ पासम्मि ॥१॥"

वृद्धा अपि तल्लक्षणमेवमाहुः—

इच्छाछंदोत्ति एगट्ठा ॥१। उस्सुत्तमणुवदिट्ठं सच्छंदविगप्पियं अणणुवाइ। परतत्ति पवत्तिति णेओ इणमो अहाछंदो ॥२॥ सच्छंदमइविगप्पिय किंची सुहसायविगइपडिबद्धो। तिहिगारवेहिं मज्जइ तं जाणाही अहाछंदं ॥३॥" एते पार्श्वस्थादयोऽवन्दनीयाः, क्व ?-जिनमते, न तु लोक इति गाथार्थः॥

प्रज्ञापयन्। एष तु यथाच्छन्द इच्छाछन्द इति एकार्थौ ॥ १ ॥ उत्सूत्रमनुपदिष्टं स्वच्छन्दविकल्पितमननुपाति। परतप्तिं प्रवर्त्तयति ज्ञेयोऽयं यथाच्छन्दः ॥२॥ स्वच्छन्दमतिविकल्पितं किञ्चित्सुखसातविकृतिप्रतिबद्धः। त्रिभिर्गौरवैर्माद्यति तं जानीहि यथाच्छन्दम् ॥ ३ ॥

"संनिहिमाहाकम्मं जलफलकुसुमाइ सवसच्चित्तं ।
निच्चदुत्तिवार भोअण--विगइलवंगाइ तंबोलं ॥१॥
वत्थं दुप्पडिलेहिय--मपमाणसकन्नियं दुकूलाइं ।
सिज्जोवाणहवाहण--आऊहतंबाइपत्ताइं ॥२॥
सिरतुंडं खुरमुंडं रयहरमुहपत्तिधारणं कज्जे ।
एगागित्तभमणं सच्छंदं चिट्ठिअं गीअं ॥३॥
चेइयमठाइवासं पूआरंभाइ निच्चवासत्तं ।
देवाइ दवभोगं जिणहरसालाइकारवणं ॥४॥
न्हाणुवट्टणभूसं ववहारं गंथसंगहं कीलं ।
गामकुलाइममत्तं थीनट्टं थीपसंगं च ॥
थीपरिग्गहो वावि" इति पाठः ॥५॥
निरयगइहेउजोइ--सनिमित्त तेगिच्छमंतजोगाइ ।
मिच्छाइरायसेवं नीयाणवि पावसाहिज्जं ॥६॥
सुविहियसाहुपउसं तप्पासे धम्मकम्मपडिसेहं ।
सासणपभावणाए मच्छरलउडाइकलिकरणं ॥७॥
सीसोदराइफोडण--भट्टित्तं लोहहेउ गिहिथुणणं ।
जिणपडिमाकयविक्कय--उच्चाडणखुद्दकरणाइं ॥८॥
थीकरफासं बंभे संदेहकलंतरेण धणदाणं ।
वट्टडयसीसगहणं नीयकुलस्सावि दव्वेणं ॥९॥
सवावज्जपवत्तण--मुहुत्तदाणाइ सवलोआणं ।

सालाइ गिहि घरे वा खज्जग यागाइ करणाइं ॥१०॥
जक्खाइ गुत्तदेवय-पूआ पूआवणाइमिच्छत्तं ।
सम्मत्ताइनिसेहं तेसिं मुल्लेण वा दाणं ॥११॥
इय बहुहा सावज्जं जिणपडिकुट्ठं च गरहिअं लोए ।
जे सेवंति कुकम्मं करिंति कारिंति निद्धम्मा ॥१२॥
इह परलोअहयाणं सासणजसघाइणं कुदिट्ठीणं ।
कह जिणदंसणमेसिं को वेसो किंच नमणाइ ॥१३॥
इत्यादि॥

न चैवंविधलक्षणा एव साम्प्रतिकसाधवः सर्वेऽपि, केषांचित्सम्प्रत्यपि सर्वशक्त्या यतिक्रियासु यतमानानां यतीनां दर्शनात् । अथ देशतः पार्श्वस्थास्तर्हि वदन्तु तल्लक्षणम् । श्रीआवश्यके—

देसम्मि पासत्थो सिज्जायरभिहडरायपिंडं च ।
निययं च अग्गपिंडं भुंजइ निक्कारणे चेव ॥१॥
कुलनिस्साए विहरइ ठवणकुलाणि अ अकारणे विसइ।
संखडिपलोअणाए गच्छइ तह संथवं कुणइ ॥२॥

इति श्री आवश्यकोक्तं प्रसिद्धमेव ।

ननु एतत्सर्वं समुदितं तल्लक्षणं पृथग् २ वा, नैतावत् पृथक् २, एवं हि स्थूलभद्रादीनामपि कोशागृहस्थितौ चतुर्मासीं यावत् तद्गृह एवाहारग्रहणेन शय्यातरपिण्डदोषाद्देशपार्श्वस्थत्वप्रसङ्गः ।

यदुक्तं- आवश्यकबृहद्वृत्तौ योगसंग्रहेषु—

'थूलभद्दसामी तत्थेव गणिआघरे भिक्खं गेण्हइ'

इति अथ समुदितमिति पक्षः, तर्हि साम्प्रतिकसाधुष्वपि केषुचिच्छय्यातराभ्याहृतराजपिण्डग्रहणादिरूपसमुदित तल्लक्षणस्याभावात् कथं देशपार्श्वस्थत्वम् ?, अनया दि-शा अवसन्नादित्वमपि निषेध्यम्, किञ्च-सौम्य! किमेवं मुधा सम्यक्सिद्धान्तानभिज्ञोऽपि पार्श्वस्थत्वादिदोषारोपेण साम्प्रतिकसाधून् दूषयसि ?। यतः श्रीनिशीथे—

संतगुणछायणा खलु परपरिवाओ अ होइ अलियं च।
धम्मे अ अरज्जमाणो साहुपउसे य संसारो ॥१॥

ततः श्रृणु सम्यक् तत्त्वं, मात्सर्यमपहाय, यदि मोक्षार्थ्यसि। शास्त्रे पुलाकादयः पञ्च निर्ग्रन्थाउक्तास्तत्र बकुशकुशीलौ सर्वतीर्थंकराणां तीर्थं यावत् प्रवर्त्तेते । तल्लक्षणं चेदम्-श्रीभगवती २५ शतकषष्ठोद्देशकार्थसंग्रहिण्याम् । श्री अभयदेवसूरिकृतपञ्चनिर्ग्रन्थसंग्रहिण्यां, तथाहि--

बउसं सबलं कब्बुर--मेगट्ठं तमिह जस्स चारित्तं ।
अइयारपंकभावा सो बउसो होइ निग्गंथो ॥१॥
उवगरणसरीरेसुं सदुहा दुविहो होइ पंचविहो ।
आभोग अणाभोगे अस्संवुडसंवुडे सुहुमे ॥२॥

---

१ बकुशं शबलं कर्बुरमिति 'एकार्थं' एकाभिधेयं तदिति तादृशं यस्य चारित्रमतिचारपङ्कसद्भावात् । स बकुशो भवति निर्ग्रन्थः ॥ १ ॥

२ स बकुश उपकरण-शरीरभेदाद्द्वेधा । तत्र वस्त्रपात्राद्युपकरणविभूषानुवर्त्तनशीलः उपकरणबकुशः । करचरणनखमुखादिदेहावयवविभूषानुवर्त्तनशीलः शरीरबकुशः । सद्विविधो-

जो उवगरणे बउसो सो धुवइ अपाउसेवि वत्थाइं ।
इच्छइ य लण्हयाइं किंचि विभूसाइ भुंजइ य ॥३॥
तह[2]पत्तदंडयाईघट्ठं मट्ठं सिणेहकयतेअं ।
धारेइ विभूसाए बहुं च पत्थेइ उवगरणं ॥४॥
देह[3]बउसो अकज्जे करचणनहाइअं विभूसेइ ।
दुविहो वि इमो इड्ढिं इच्छइ परिवारपभिइयं ॥५॥
पंडिच्चतव[4]वाइकयं जसं च पत्थेइ तम्मि तुस्सई य ।
सुहसीलो नय बाढं जयइ अहोरत्तकिरियासु ॥६॥

ऽपि पञ्चधा तद्यथा—साधूनामकृत्यमेतदिति जानन् कुर्वन्नाभोगबकुशः १ । अजानन् कुर्वन्ननाभोगबकुशः २ । मूलगुणैरुत्तरगुणैश्च संवृतः कुर्वन् संवृतबकुशः ३ । असंवृतः कुर्वन्नसंवृतबकुशः ४ । नेत्रनासिकामुखादिमलापनयनं कुर्वन् सूक्ष्मो भवति, ५ ॥ २ ॥

१ उपकरणे यो बकुशो भवति, सोऽप्रावृष्यपि वस्त्राणि धावयति, इच्छति च 'श्लक्ष्णानि' सूक्ष्माणि वस्त्राणि किञ्चिद् 'विभूषायै' विभूषार्थं समुपभुङ्क्ते च ॥ ३ ॥

२ तथा पात्रदण्डकादि घृष्टं खरपाषाणादिना, मृष्टं श्लक्ष्णपाषाणादिना सुकुमालं कृतं, तथा स्नेहादिना कृततेजस्कं धारयति 'विभूषायै' विभूषार्थं, बहु च प्रार्थयते उपकरणं ॥४॥

३ देहबकुशः 'अकार्ये' कार्याभावेऽशुचिनेत्रविकारादि विना करचरणनखादिकं विभूषयति । उपकरणशरीरबकुशो द्विविधोऽप्ययं परिवार प्रभृतिकामृद्धिं इच्छति ॥ ५ ॥

४ पाण्डित्य तपआदिकृतं यशश्च प्रार्थयते । 'तस्मिन्' यशसि जाते सति 'तुष्यति' हृष्यति । सुखशीलः न च बाढं यततेऽहोरात्रं 'क्रियासु' धर्मानुष्ठानेषु ॥ ६ ॥

[1]परिवारो य असंजम अविवित्तो होइ किंचि एयस्स ।
घंसिअपाओ तिल्लाइ मसिणिओ कत्तरि य केसो ॥७॥
[2]तह देससव्वछेआ--रिएहिं सबलेहिं संजुओ बउसो ।
मोहक्खयट्ठमब्भुट्ठिओ अ सुत्तंमि भणिअं च ॥८॥
[3]उवगरणदेहचुक्खा रिद्धी जसगारवासिआ निच्चं ।
बहुसबलछेअजुत्ता निग्गंथा बाउसा भणिया ॥९॥
[4]आभोगे जाणंतो करेइ दोसं अजाणमणभोगे ।
मूलुत्तरेहिं संवुड--विवरीय असंवुडो होइ ॥१०॥
[5]अच्छि मुहमज्जमाणो होइ अहासुहमओ तहा बउसो
सीलं चरणं तं जस्स कुच्छिअं सो इह कुसीलो ॥११॥

---

१ एतस्य परिवारः 'असंयमः असंयमवान्, 'अविविक्तः' वस्त्रपात्रादिस्नेहादपृग्भूतः, 'घंसिअपाओ' इति घर्षितपादः तैलादिना मसृणितः कर्त्तितकेशः ॥ ७ ॥

२ तथा देशच्छेदसर्वच्छेदार्हैः शबलचारित्रैः संयुतो बकुशो मोहक्षयार्थमभ्युत्थितः सूत्रे भणितं च ॥ ८ ॥

३ उपकरणदेहशुद्धा ऋद्धियशः सातागारवाश्रिता अविविक्तपरिवाराश्छेदयोग्यशबलचारित्रयुक्ता निर्ग्रन्था बकुशा भणिताः ॥ ९ ॥

४ साधूनामकृत्यमेतदिति जानन् कुर्वन्नाभोगबकुशः १ । अजानन् कुर्वन्ननाभोगबकुशः २ । मूलोत्तरगुणैर्युक्ता लोकेऽविज्ञातदोषः संवृतबकुशः ३ । विपरीतो लोके प्रकटदोषोऽसंवृतबकुशः ४ ॥ १० ॥

५ 'अक्षिमुखादिमार्जयन्' नेत्रमलाद्यपनयन् यथासूक्ष्मबकुशः ५। शीलं चरणं तद्यस्य कुत्सितं स इह कुशीलः ॥ ११ ॥

[१]पडिसेवणाकसाए दुहा कुसीलो दुहा वि पंचविहो ।
नाणे दंसणचरणे तवे अहसुहुमए चेव ॥१२॥
[२]इह नाणाइकुसीलो उवजीवं होइ नाणपभिईए ।
अह सुहुमो पुण तस्सं एस तवस्सि त्ति संसाए ॥१३॥
जो नाणदंसणतवे अणुजुंजइ कोहमाणमायाहिं ।
सो नाणाइकुसीलो कसायओ होइ नायव्वो ॥१४॥
चॉरित्तम्मि कुसीलो कसायओ जो पयच्छई सावं ।
मणसा कोहाईए निसेवयं हो अहा सुहुमो ॥१५॥
[५]अहवा वि कसाएहिं नाणाईणं विराहओ जो य ।
सो नाणाइकुसीलो नेओ वक्खाणभेएणं ॥१६॥
[६]मूलुत्तरगुणविसया पडिसेवासेवए पुलाए अ ।
उत्तरगुणेसु बउसो सेसा पडिसेवणारहिआ ॥१७॥"

---

१ स कुशीलो विपरीताऽऽराधना प्रतिसेवना तया कुशीलः
१ कषायैः सञ्ज्वलनोदयादिरूपैः कुशीलः कषायकुशीलः२ ॥१२॥
२ द्विधापि पञ्चधा-ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तपो विषयो यथासूक्ष्माश्च॥
३ इह ज्ञानादिकुशीलो ज्ञानदर्शनचारित्रतपांस्युपजीवंस्तत्तत्प्रतिसेवना कुशीलः । एषः तु तपस्वीत्यादिप्रशंसया यस्तुष्यति स यथासूक्ष्मः प्रतिसेवना कुशीलः ॥ १४ ॥
४ तथा ज्ञानदर्शनतपांसि यः सञ्ज्वलनकषायोदययुक्तः स्वस्वविषये व्यापारयति स तत्तत्कषायकुशीलो ज्ञातव्यः ॥१५॥
५ चारित्रकुशीलः स यः कषायाविष्टः शापं प्रयच्छति । मनसा क्रोधादीन्निषेवन् यथासूक्ष्मकषायकुशीलः ॥ १६ ॥
६ मूलगुणाः प्राणातिपातविरमणादयः, दशविध प्रत्याख्यानादयस्तूत्तरगुणाः, तद्विषया प्रतिसेवा मूलोत्तरगुणप्रतिसेवा तस्या आसेवकः पुलाकः प्रतिसेवा कुशीलश्च । बकुश उत्तरगुणप्रतिसेवकः । शेषाः प्रतिसेवनारहिताः ॥ १७ ॥

अत्र मूलगुणोत्तरगुणविषया विराधना पुलाके, प्रति सेवना कुशीले च, उत्तरगुणविषया च बकुशे, शेषाः प्रतिसेवना रहिता, इति श्रीउत्तराध्ययनबृहद्वृत्तावपि षष्ठाध्ययनेऽयमर्थः सविस्तरमुक्तोऽस्ति। तथा तत्रैव बकुशो द्विविधः, उपकरण बकुशः शरीरबकुशश्च तत्रोपकरणाभिष्वक्तचित्तो विविधविचित्रमहाधनोपकरणपरिग्रहयुक्तः, विशेषयुक्तोपकरणकाङ्क्षायुक्तो नित्यं तत्प्रतिकारसेवी भिक्षुरुपकरणबकुशो भवति।

शरीराभिष्वक्तचित्तो करचरणनखमुखादिदेहावयवविभूषानुवर्त्तनशीलः शरीरबकुशः। प्रतिसेवनाकुशीलो मूलगुणान् विराधयन् उत्तरगुणेषु काञ्चिद्विराधनां प्रतिसेवन्ते। भगवतीसूत्रे तु,

बकुसेणं पुच्छा? "जाव णो मूलगुणपडिसेवए होज्जा"
'पडिसेवणा कुसीलो जहा पुलाए'

अत्र च यत्पुलाकादीनां मूलोत्तरगुणविराधकत्वेऽपि निर्ग्रन्थत्वमुक्तं, तज्जघन्यजघन्यतरोत्कृष्टोत्कृष्टतरादिभेदतः संयमस्थानानामसङ्ख्यतया तदात्मकतया च चारित्रपरिणतेरिति भावनीयम्, इति श्री उत्तराध्ययनबृहद्वृत्तौ। तस्मादलं पार्श्वस्थादिलक्षणगवेषणक्लेशेन, किन्तु कालोचितयतनया यतमानाः साधवो बकुशकुशीलत्वं न व्यभिचरन्तीति वन्द्या एव। यदुक्तं श्रीजिनवल्लभसूरिभिर्द्वादशकुलक्यां—

कालाइदोसओ जइवि कह वि दीसंति तारिसा न जई
सव्वत्थ तह त्ति नत्थित्ति नेव कुज्जा अणासासं॥१॥यतः—

कुग्गह कलंकरहिआ जहसत्ति जहागमं च जयमाणा ।
जेण विसुद्धचरित्तत्ति वुत्तमरिहंतसमयम्मि ॥२॥

सम्मत्तनाणचरणा--नुवाइ आणाणुगं च जं जत्थ ।
जाणिज्जा गुणं तं तत्थ पूअए परमभत्तीए ॥३॥ इति

व्यवहारप्रथमोद्देशकेऽपि--

चोअग छक्कायाणं तु संजमे जोणुधावए ताव (जाव)।
मूलगुणउत्तरगुणो दोण्णित्ति अणुधावए (ताव) ॥२॥

अत्र वृत्तिः-हे नोदक ! यावत्षड्जीवनिकायेषु संयमः प्रबन्धेन वर्त्तते । तावन्मूलगुणाउत्तरगुणाश्च द्वयेऽप्येतेऽनुधावन्ति वर्त्तन्ते इति । न च पार्श्वस्थादीनामपि सर्वथा अवन्द्यत्वम् । आगमे तु--

कारणे जाते प्रकटप्रतिसेविनामपि वन्द्यत्वाभिधानात् ।

तदुक्तमावश्यके--

[१]मुक्कधुरा संपागड--सेवी चरणकरणपब्भट्ठे ।

---

१ व्याख्या—धूः संयमधूः परिगृह्यते, मुक्ता-परित्यक्ता धूर्येनेति समासः, सम्प्रकटं—प्रवचनोपघातनिरपेक्षमेव मूलोत्तरगुणजालं सेवितुं शीलमस्येति सम्प्रकटसेवी चेति विग्रहः, तथा चर्यत इति चरणं व्रतादिलक्षणं क्रियत इति । करणं-पिण्डविशुद्ध्यादिलक्षणं चरणकरणाभ्यां प्रकर्षेण भ्रष्टः-अपेतश्चरणकरणप्रभ्रष्टः, मुक्तधूः सम्प्रकटसेवी चासौ चरणकरणप्रभ्रष्टश्चेति समासस्तस्मिन्, प्राकृतशैल्या अकारेकारयोर्दीर्घत्वम्, ॥

लिंगावसेसमित्ते जं कीरइ तं पुणो वुच्छं ॥१॥
वायाइ[2] नमुक्कारो हत्थुस्सेहो अ सीसनमणं च ।
संपुच्छणाऽच्छणं छोभवंदणं वंदणं वावि ॥२॥
एआइं[3] अकुव्वंतो जहारिहं अरिहदेसिए मग्गे ।
न भवइ पवयणभत्ती अभत्तिमंताइआ दोसा ॥३॥

---

१ इत्थम्भूते 'लिङ्गावशेषमात्रे केवलद्रव्यलिङ्गयुक्त यत्क्रियते किमपि तत्पुनर्वक्ष्ये, पुनः शब्दो विशेषणार्थः, किं विशेषयति ?—कारणापेक्षं कारणमाश्रित्य यत्क्रियते तद्वक्ष्ये—अभिधास्ये, कारणाभावपक्षे तु प्रतिषेधः कृत एव, विशेषणसाफल्यं तु मुक्तधूरपि कदाचित्सम्प्रकटसेवी न भवत्यपि अतस्तद्ग्रहणं, संप्रकटसेवी चरणकरणप्रभ्रष्ट एवेति स्वरूपकथनमिति गाथार्थः

२ व्याख्या 'वायाए'त्ति निर्गमभूम्यादौ दृष्टस्य वाचाभिलापः क्रियते हे देवदत्त ! कीदृशस्त्वमित्यादिलक्षणः, गुरुतर पुरुषकार्यापेक्षं वा तस्यैव 'नमोक्कार'त्ति नमस्कारः क्रियते—हे देवदत्त ! नमस्ते, एवं सर्वत्रोत्तरविशेषकरणे पुरुषकार्यभेदः प्राक्तनोपचारानुवृत्तिश्च द्रष्टव्या, 'हत्थुसेहो य'त्ति अभिलापनमस्कारगर्भः हस्तोच्छ्रयश्च क्रियते, 'सीसनमणं च' शिरसा उत्तमाङ्गेन नमनं शिरोनमनं च क्रियते, तथा 'संपुच्छनं' कुशलं भवत इत्यादि, अनुस्वारलोपोऽत्र द्रष्टव्यः, 'अच्छणं'ति त-[द्वमानस्त] त्सन्निधावासनं कञ्चित्कालमिति, एष तावद्बहिर्दृष्टस्य विधिः, कारणविशेषतः पु स्तत्प्रतिश्रयमपि गम्यते, तत्राप्येष एव विधिः, नवरं 'छोभवंदणं'ति आरभट्या छोभवन्दनं क्रियते, 'वन्दणं वाऽवि' परिशुद्धं वा वन्दनमिति गाथार्थः

३ व्याख्या—'एतानि'वाङ्नमस्कारादीनि कषायोत्कटतयाऽकुर्वतः, अनुस्वारोऽत्रालाक्षणिकः 'यथार्हं' यथायोगमर्हद्दर्शिते मार्गे न भवति प्रवचनभक्तिः, ततः किमित्यत आह —'अभत्तिमंताइआ दोसा' प्राकृतशैल्याऽभक्त्यादयो दोषाः, आदिशब्दात् स्वार्थभ्रंशबन्धनादय इति गाथार्थः ॥

नन्वेतत्साधूनाश्रित्य, नतु श्राद्धान् । नैवं । यतः—श्राद्धजीतकल्पे,

उप्पन्नकारणम्मी वंदणयं जो न कुज्ज दुविहंपि ।
पासत्थाईयाणं उग्घाया तस्स चत्तारि ॥ ४ ॥

इति श्राद्धजीतकल्पे श्राद्धानाश्रित्य भणनात् । ननु किं नाम कारणेन श्राद्धोऽपि पार्श्वस्थादीन् वन्दते । उच्यते ज्ञानादिग्रहणरूपग्रहणशिक्षाऽऽवश्यकविध्यादिशिक्षणरूपाऽऽसेवनाशिक्षे कारणतयोक्ते एवागमे—यदुक्तं श्रीव्यवहारे प्रथमोद्देशकान्ते—

चोयइ से परिवारं अकरेमाणे भणेइ वा सड्ढे ।
अव्वुच्छित्तिकरस्स उ सुअभत्तीए कुणह पूअं ॥१॥

इत्यादि एतद्व्याख्या—प्रथमतः 'से' तस्यालोचनार्हस्य परिवारं वैयावृत्त्यादिकमकुर्वन्तं चोदयति शिक्षयति । तथा ग्रहणासेवनानिष्णात एष तत एतदस्य विनयवैयावृत्यादिकं क्रियमाणं महानिर्जराहेतुरिति । एवमपि शिक्षमाणो यदि न करोति। ततस्तस्मिन्नकुर्वाणे स्वयमहारादीनुत्पादयति । अथ स्वयं शुद्धं प्रायोग्यमाहारादिकं न लभते । ततः श्राद्धान् भणति ज्ञापयति प्रज्ञाप्य च तेभ्योऽकल्पिकमपि यतनया सम्पादयति । न च वाच्यं तस्यैवं कुकुर्वतः कथं न दोषो, यत आह—'अव्वोच्छित्ती'त्यादि अव्यवच्छित्तिकरणस्य पार्श्वस्थादेः श्रुतभक्त्या हेतुभूतयाऽकल्पिकस्याप्याहारादेः श्रुतभक्त्या पूजां कुरुत यूयं । न च तत्र दोष एवमत्रापि । इयमत्र भावना यथा कारणे पार्श्वस्थादीनां समीपे सूत्रमर्थं च गृह्णानोऽकल्पिकमा-

हारादिकं यतनया तदर्थं प्रतिसेवमानः शुद्धा, ग्रहणशिक्षायाः क्रियमाणत्वादेवमालोचनार्हस्यापि निमित्तं प्रतिसेवमानः शुद्ध एव, आसेवनाशिक्षायास्तत्समीपे क्रियमाणत्वादिति । उपदेशमालायामपि—

"¹सुगइमग्गपईवं नाणं दिंतस्स हुज्ज किमदेयं ।
जह तं पुलिंदएणं दिन्नं सिवगस्स नियगच्छि ॥१॥इति।

ननु तत्रैव ।

आलावो संवासो विसंभो संथवो पसंगो अ ।
हीणायारेहिं समं, सव्वजिणिंदेहिं पडिकुट्ठा ॥१॥

इति वचनात्तैः सह आलापाद्यपि त्यज्यते, तेषां पार्श्वे ज्ञानग्रहणादि कथं युज्यते । उच्यते यदि तेभ्योऽधिकगुणाः साधवो लभ्यन्ते ? तदा न युज्यते एव तेषां पार्श्वे ज्ञानग्रहणादि । तदभावे तु तेषामपि पार्श्वे ज्ञानग्रहणादि युक्तमेवागमप्रामाण्यात् । यदि हि यदर्थं द्वादशवर्ष सुगुरून् प्रतीक्षते साऽपि आलोचनागुर्वभावे पार्श्वस्थादिपार्श्वे ग्राह्यतयोक्ता जीतकल्पे—

आयरिआइ सगच्छे संभोइअ इअरगीअपासत्थे ।
सारुवी पच्छाकड देवयपडिमा अरिह सिद्धे ॥१॥

---

१ व्याख्या—'सुगइ इति' सद्गतिर्मोक्षरूपा तस्या मार्गः पन्थास्तत्प्रकाशनेन प्रदीपं दीपसदृशमेतादृशं ज्ञानं, ज्ञायते परिच्छिद्यते वस्त्वनेनेति ज्ञानं, अत्र श्रुतज्ञानं ग्राह्यम् , तद्ददतां ज्ञानमर्पयतां, 'हुज्ज इति' भवेत्किमदेयम् ? एतावता यदि ज्ञानदाता जीवितं मार्गयति तदा सुशिष्येण तदपि देयमित्यर्थः,

इत्यादिजीतकल्पवचनप्रामाण्यात् । तदानीं प्रतिदिनविधेयाऽऽवश्यकविधिशिक्षणादि तत्पार्श्वे सुतरां कार्यं, शुद्धचारित्रभावे ।

नन्वेवं पश्चात्कृतादीनामपि वन्द्यत्वं स्यात्तेषामपि आलोचनाधिकारेऽधिकृतत्वात्, नैवं, तेषां साधुवेषाभावात् । साधुवेषाभावे हि प्रत्येकबुद्धादिरपि न वन्द्यः स्यात्किं पुनरितरः ।

यदुक्तं श्रीपञ्चकल्पे—

एवं तु दव्वलिंगं भावे समणत्तणं तु णायव्वं ।
को उ गुणो दव्वलिंगे भण्णति इणमो सुणसु वोच्छं ॥
सक्कारवंदणनमंसणा य पूआ य लिंग कप्पम्मि ।
पत्तेयबुद्धमादी लिंगे छउमत्थतो गहणं ॥२॥
वत्थासणसक्कारो वंदण अब्भुट्ठाणं तु णायव्वं ।
पणिवाओ उ णमंसण–संतगुणकित्तणा पूआ ॥३॥
दट्ठूण दव्वलिंगं कुव्वंते ताणि इंदमाइवि ।
लिंगम्मि अविज्जंते न नज्जती एस विरओत्ति ॥४॥
पत्तेयबुद्धो जाव उ गिहिलिंगी अहव अन्नलिंगी उ ।
देवावि ता ण पूयंति मा पुज्जं होहिति कुलिंगं ॥५॥

ननु महानिशीथे-

जीवे सम्मग्गमोइन्ने घोरवीरतवं चरे ।
अचयंतो इमे पंच सव्वं कुज्जा निरत्थयं ॥१॥

कुसीलोसन्नपासत्थे सच्छंदे सबले तहा ।
दिट्ठीए वि इमे पंच--गोयमा ! न निरिक्खए ॥२॥
तथा--पंचे एसु महापावे जो न वजिज्ज गोयमा ! ।
संलावाईहिं कुसीलाई भमिही सो सुमई जहा॥३।

इति श्रीमहानिशीथे तेषां दर्शनमात्रमपि निषिध्यते । तत्कथं तेषां पार्श्वे ज्ञानग्रहणादि युज्यते । सत्यं, तेषां दर्शनमूत्सूत्राणामेव तत्रापि निषिद्धं नान्येषां । यतस्तत्रैवाधिकारे अन्तरा एता गाथाः सन्ति ॥

सव्वन्नुदेसिअं मग्गं सव्वदुक्खपणासणं ।
सायागारवगुरुए अन्नहा भणिउमुज्झए ॥१॥
पयमक्खरम्मि जो एगं सव्वन्नूहिं पवेइअं ।
न रोइज्ज अन्नहा भासे मिच्छदिट्ठी स निच्छिअं॥२॥
एवं नाऊण संसग्गिं दरिसणालावसंथवं ।
संवासं च हिआकंखी सव्वोवाएहिं वज्जए ॥३॥ इ०

किञ्च-श्रीमहानिशीथेऽतिपरिणामकानामपि परमसंवेगजनकतया भयवाक्यान्येव प्रायो दृश्यन्ते । यथा-
गोयमा ! जे केई अणोवहाणेणं सुअनाणमहीअति '

जाव समणुज्जाणंति, तेणं महापावकम्मे महंती, सुपसत्थनाणस्सासायणं कुव्वंति । तथा-जेणं केई न इच्छिज्जा एअंतणं अविणउवहाणेणं चेव पंचमंगलाइसुअनाणसमहिज्जणे अज्झावेइ वा अ-

ज्झावयमाणस्स वा अणुन्नं पयाइ । से णं न भविज्जा पियधम्मे दढधम्मे भत्तिजुए, हीलिज्जा सुत्तं अत्थं तदुभयं, हीलिज्जा गुरुं, आसाइज्जा अईआणागयवट्टमाणतित्थयरे, आसाइज्जा आयरियउवज्झायसाहुणो, जेणं आसाइज्जा सुअनाणमिति '

इत्यादि तत्रैव तृतीयाध्ययने । इति युष्माकमपि विनयोपधान-वहनादिविधिमविधाय पञ्चमङ्गलाद्यधीयानानां महापापत्वेनातीतानागतवर्त्तमानतीर्थंकराशातनाकारित्वेना द्रष्टव्यमेव स्यादिति । यच्चिन्त्यते परस्मिन् तदायाति स्वस्मिन्निति न्याय एवोपढौकते । कथञ्चैवं भक्तपरिज्ञायाम्—

अन्नाणी विहु गोवो आराहित्ता गओ नमुक्कारं ।
चंपाएसिट्ठिसुउ सुदंसणो विस्सुओ जाओ ॥१॥

इति । आवश्यके—

इह लोगम्मि तिदंडी सा दिव्वं माउगिंवणमेव ।
परलोइ चंडपिंगल-हुंडिअजक्खो अ दिट्ठंता ॥१॥

इत्यावश्यके चोक्तं कथं सङ्गच्छते । अनुपधानेनापि नमस्कार पाठिनां सुगतिप्रतिपादनात् । किञ्च श्रीमहानिशीथे स्वल्पेऽपि प्रमादे साधोः कुशीलत्वोक्तेस्तस्य च त्वदभिसन्धिनाऽचारित्रित्वात् सर्वागमोक्तं साधोः प्रमत्ताप्रमत्तरूपं गुणस्थानकद्वयं कथं सङ्गच्छते ? । यदि च कुशीलादीनामेकान्तेनाचारित्रत्वं सम्मतं स्यात , तदा तत्रैव महानिशीथे गणाधिपत्ययोग्यगुरुगुणानुक्त्वा,

"उड्ढं पुच्छा गोयमा ! तओ परेणं उड्ढं हायमाणे कालसमए तत्थणं जे केइ छक्कायसमारंभविवज्जी, से णं धन्ने पुन्ने वंदे पुज्जे नमंसणिज्जे"

इति पञ्चमाध्ययने षट्कायसमारम्भविवर्जिनामपि कथं पूज्यत्वमवादि ! तथा श्रीपञ्चकल्पेऽपि—

दंसण नाण चरित्तं तव विणयं जत्थ जत्तिअं पासे।
जिणपन्नत्तं भत्तीइ पूअए तं तहा पायं ॥१॥

अपि च-अवन्द्यमध्योक्तकुशीलस्य निर्ग्रन्थमध्योक्तकुशीलस्य च लक्षणे विचार्यमाणे एकत्वमेव दृश्यते। तथाहि-अवन्द्यकुशीलः श्रीआवश्यके ज्ञानदर्शनचारित्राचारविराधकभेदात् त्रिविध उक्तः। श्रीमहानिशीथे तु—

"अणेगहा कुसीले, तं जहा-नाणकुसीले १ दंसणकुसीले २ चारित्तकुसीले ३ तवकुसीले वीरियकुसीले इति"

निर्ग्रन्थमध्योक्तकुशीलश्च श्रीभगवत्यां ज्ञानदर्शनचारित्रतपसां विराधको मनसा क्रोधाद्यासेवकश्च पञ्चधोक्तः। एवं च ज्ञानदर्शनचारित्राणि विराधयन् कुशील इत्युच्यते। इति तत्त्वतो द्वयोरपि लक्षणमेकमेव। श्रीमहानिशीथे च-

एवं अट्ठरसण्हं सीलंगसहस्साणं जो जत्थ पए पमत्ते भविज्जा। से णं तेणं पमायदोसे णं कुसीलेणो य।

इति सूक्ष्मविराधकस्याप्यवन्द्यकुशीलत्वेनोक्तेर्बकुशकुशीलानां निर्ग्रन्थानामपि श्रीभगवत्यामुत्तरगुणज्ञानादिविराधकत्वेनोक्तानां कथं नावन्द्यकुशीलत्वं, तेषां च तथात्वे शासनोच्छेद एव । यतः—

न विणा तित्थं निअंठेहिं नातित्था य निअंठया ।
छक्कायसंजमो जाव ताव अणुसज्जणा दुण्हं ॥१॥
सव्वजिणाणं निच्चं बउसकुसीलेहिं वट्टए तित्थं ॥

इति...........ततः पार्श्वस्थादीनामेकान्तेनावन्द्यत्वाक्षराणि भयवाक्यतयैव स्वीकर्त्तव्यानि, नमस्काराद्युपधानवाक्यवत्, भयवाक्यं च श्रुत्वा मन्दसंवेगोऽपि तीव्रश्रद्धः स्यात् । एवं च—

पासत्थो ओसन्नो० ॥ १ ॥
कुसीलोसन्नपासत्थो सच्छंदे सिढिले तहा ।
दिट्ठीए वि इमे पंच गोयमा ! न निरिक्खए ॥२॥
असुइट्ठाणे अडिआ० ॥ ३ ॥ इत्यादि

वाक्यानि भयवाक्यत्वेन पार्श्वस्थत्वादिकारणशय्यातरपिण्डदानादित्याजनपराणि पार्श्वस्थादिसंसर्गनिषेधनपराणि च बोद्धव्यानि ।

नतु तेषां सर्वथा अवंद्यत्वख्यापनपराणि । यथा हि लोके दुर्विनीतं पुत्रादिकं प्रति एतस्य भोजनं न दातव्यमित्यादिवाक्यानि दुर्विनयशिक्षणपराणि नतु भोजननिषेधपराणि । यतः श्रीधर्मरत्नप्रकरणे—

विहि[१]उज्जम वण्णय भय उस्सग्ग ववायतदुभयगयाइं।
सुत्ताइं बहुविहाइं समए गंभीरभावाइं ॥ १ ॥

१टीका—विधिश्चोद्यमश्च वर्णकश्च भयं चोत्सर्गश्चापवादश्च तदुभयं चेति द्वन्द्वः, तस्य च स्वपदप्रधानत्वाद्गतानीति प्रत्येकमभिसंबध्यते । सूत्राणि च विशेष्याणि । ततश्चैवं योज्यते कानिचिद्विधिगतानि सूत्राणि समये सन्ति । यथा—"संपत्ते भिक्खकालंमि असंभंतो अमुच्छिओ । इमेण कमजोएण भत्तपाणं गवेसए ॥ १ ॥" इत्यादीनि पिण्डग्रहणविधिज्ञापकानि । उद्यमसूत्राणि—"दुमपत्तए पंडुयए जहा निवडइ राइगणाण अच्चए । एवं मणुयाण जीवियं समयं गोयम ? मा पमायए ॥ १ ॥" इत्यादीनि । तथा—"वंदइ उभओ कालंपि चेइयाइं थयथुईपरमो । जिणवरपडिमा घरधूयपुप्फगंधच्चणे जुत्तो ॥१॥" कालनिरूपणस्योद्यमहेतुत्वान्न पुनरन्यदाऽपि चैत्यवन्दनं न धर्मायेति । वर्णकसूत्राणि चरितानुवादरूपाणि । यथा—द्रौपद्या पुरुषपञ्चकस्य वरमालानिक्षेपः, ज्ञाताधर्मकथाद्यङ्गेषु नगरादिवर्णकरूपाणि च वर्णकसूत्राणि । भयसूत्राणि नारकादिदुःखदर्शकानि । उक्तं च—"नरएसु मंसरुहिराइवन्नणं जं पसिद्धिमेत्तेण । भयहेउ इहर तेसिं वेउव्वियभावओ न तयं ॥ १ ॥" अथवा दुःखविपाकेषु पापकारिणां चरितकथनानि भयसूत्राणि । तद्भयात्प्राणिनां पापनिवृत्तिसंभवात् । उत्सर्गसूत्राणि—"इच्चेसिं छण्हं जीवनिकायाणं नेव सयं दंडं समारंभेज्जा ॥" इत्यादिषड्जीवनिकायरक्षाविधायकानि । अपवादसूत्राणि प्रायश्छेदग्रन्थगम्यानि । यद्वा—"न यालभेज्जा निउणं सहायं गुणाहियं वा गुणओ समं वा । एक्कोवि पावाइं विवज्जयंतो विहरेज्ज कामेसु असज्ज

एसिं विसयविभागं अमुणंतो नाणवरणकम्मुदया ।
मुज्झइ जीवो तत्तो सपरेसिमसग्गहं जणइ ॥२॥

इति । किञ्च–यदि पार्श्वस्थादिसङ्गतिनिषेधकवाक्यानि, न भयवाक्यतया अङ्गी क्रियन्ते, किन्तु विधिवाक्यतयैव । तदानीं श्रीआवश्यके श्रीसम्यक्त्वदंडके तदतीचारपञ्चके च परतीर्थिकाणामालापान्नदानप्रशंसादिवर्जनवत्पार्श्वस्थादीनामपि तद्वर्जनं कृतमभविष्यत् । चतुर्विधमिथ्यात्वे च लोकोत्तरं गुरुगतं मिथ्यात्वं, (लिंगधारिस्वरूपं) तथाहि—

"[1]दगपाणं पुप्फफलं अणेसणिज्जं गिहत्थकिच्चाइं ।
अजया पडिसेवंती जइ वेसविडंबगा नवरं ॥१॥"
[2]उसन्नया अबोही पवयण उब्भावणा य बोहिओ ।

माणो ' १ ॥ " इत्यादीन्यपि । तदुभयसूत्राणि येषूत्सर्गापवादौ युगपत्कथ्येते । यथा–"अट्टज्झाणाभावे सम्मं अहियासियव्वओ वाही । तब्भावम्मि उ विहिणा पडियारपवत्तणं नेयं ॥१॥" एवं 'सूत्राणि बहुविधानि' स्वसमयपरसमयनिश्चयव्यवहारज्ञानक्रियादिना नयमतप्रकाशकानि 'समये' सिद्धान्ते 'गम्भीरभावानि' महामतिगम्याभिप्रायाणि सन्तीति शेषः ॥ १ ॥

१ व्या०—'दगपाणं इति' दगपाणं शब्देन सचित्तजलपानं पुष्पं जात्यादीनां, फलमाम्रादीनां, 'अणेसणिज्जं इति' आधाकर्मादिदोषदुष्टमाहारादि, अयता असंयताः प्रतिसेवन्ते प्रतिकूलमाचरन्ति, नवरं केवलं ते वेषविडंबका एव, न तु स्वल्पमपि परमार्थसाधका इत्यर्थः ॥

२ व्या० 'उसन्नया इति' एतादृशानां भ्रष्टाचाराणामवसन्नता पराभवो भवति, अबोधिर्धर्मप्राप्त्यभावः स्यात् । यतः प्रवचनस्य,

ओसन्नो वि वरं पिहु पवयण उब्भावणापरमो ॥२॥
गुणहीणो गुणरयणा--यरेसु जो कुणइ तुल्लमप्पाणं ।
सुतवस्सिणो अ हीलइ सम्मत्तं कोमलं तस्स ॥३॥
उसन्नस्स गिहिस्स व जिणपवयणतिव्वभावियमइस्स ।
कीरइ जं अणवज्जं दढसम्मत्तस्स वत्थासु ॥ ४ ॥
पासत्थोसन्नकुसील--नायसंसत्तं जणं महाछंदं ।

---

१ शासनस्योद्भावनायां प्रभावनायां वर्द्धितायां सत्यां बोधिरूपं फलं भवति, नतु प्रवचनहीलनायां कृतायामित्यर्थः। 'उसन्नोवित्ति' अवसन्नोऽपि कर्मपारवश्येन शिथिलाचारोऽपि वरं श्रेष्टः, यदि 'पिहुत्ति' पृथुपृथुतरं यथास्यात्तथा प्रवचनस्य शासनस्योद्भावना प्रभावना शोभेति यावत्, तस्यां परमः प्रधानो भवति, व्याख्यानादिना शासनप्रभावकोऽवसन्नोऽपि वरमित्यर्थः ॥

२ व्या० 'गुणहीणो इति' गुणेन चारित्रादिना हीन एतादृशो गुणरत्नाकरैर्गुणसमुद्रैः साधुभिः सार्धं यः स्वकीयमात्मानं तुल्यं करोति, वयमपि साधव इति मन्यन्ते, तस्य पुरुषस्य सम्यक्त्वं कोमलमसारमर्थात्स मिथ्यादृष्टिरित्यर्थः ॥

३ व्या० 'उसन्नस्सेति' अवसन्नस्य पार्श्वस्थादिकस्य वाऽथवा गृहस्थस्य, कीदृशस्य ? जिनस्तीर्थंकरस्तस्य प्रवचने सिद्धान्ते धर्मेण तीव्रभाविता मतिर्यस्य तस्य जिनधर्मरागरक्तस्यैतादृशस्याऽवसन्नस्य श्रावकस्य वा यद्वैयावृत्यादि क्रियते, तत्सर्वमनवद्यं निष्पापं निर्दूषणमिति यावत्, कीदृशस्य ? दृढसम्यक्त्वस्य निश्चलदर्शनस्य कदा वैयावृत्यादि करोति ? अवस्थासु क्षेत्रकालाद्यवस्थासु ॥

४ व्या० 'पासत्थो इति' पार्श्वे ज्ञानदर्शनचारित्राणां समीपे तिष्ठतीति पार्श्वस्थः, अवसन्नश्चारित्रविषये शिथिलाचारः कुशीलः नायशब्देन यो न भणनाद् ज्ञानविराधकः, 'संसत्तं जणं इति'

[१]नाऊणं तं सुविहिया सव्वपयत्तेण वज्जंति ॥ ॥५॥
बायालमेसणाओ न रक्खइ धाइसिज्जपिंडं च ।
आहारेइ अभिक्खं विगइ उ सन्निहिं खाइ ॥१॥
सुर[३]प्पमाणभोजी आहारेइ अभिक्खमाहारं ।
नय मंडलीइं भुंजइ नय भिक्खं हिंडइ अलसो ॥२॥
कीवो न[४] कुणइ लोअं लज्जइ पडिमाइ्ज्जलमवणेइ ।
सोवाहणो अ हिंडइ बंधइ कडिपट्टयमकज्जे ॥३॥

१संसक्तो, यो यत्र यादृशो मिलति, तत्र तत्सगत्या तादृशो भवति स संसक्त इत्युच्यते, यथाछंदः स्वकीयमत्योत्सूत्रप्ररूपकः, एतेषां स्वरूपं ज्ञात्वा सुविहिताः शोभनानुष्ठानाः साधवस्तं पार्श्वस्थादिकं सर्वप्रयत्नेन सर्वशक्त्या वर्जयन्ति तत्सङ्गतिं न कुर्वन्ति चारित्रविनाशकारित्वादित्यर्थः ॥

अथ पार्श्वस्थादीनां लक्षणानि कथयति—

२ व्या० 'बायाल इति' द्विचत्वारिंशत्संख्याका एषणा इति आहारविषया गवेषणास्तान् न रक्षति, न पालयति, आहारदोषान्न निवारयतीत्यर्थः, च पुनर्धात्रीपिण्डं न रक्षति, न निवारयति, 'सिज्जत्ति' शय्यातरपिण्डं गृण्हाति, अभीक्ष्णं पुनः पुनर्विकृतीर्दुग्धदधिप्रमुखाः कारणं विनाऽऽहारयति' 'सन्निहिं इति' रात्रावथवा रात्रिरक्षितं वस्तु खादति भक्षयतीत्येवंशीलः ॥

३ व्या० 'सूर इति' सूर्यप्रमाणं उदयादारभ्याऽस्तं यावद्भुङ्क्ते इत्येवंशीलः, अभीक्ष्णं निरन्तरमाहारमशनाद्याहरति भुङ्क्ते, न च साधुमंडल्यां भोजनं करोति, एकाक्येव भोजनं करोति, न च भिक्षार्थं हिंडति भ्रमति, गोचर्यां न गच्छति, अलसः सन् स्तोके एव गृहे बहुतरं गृण्हातीत्यर्थः ॥

४ व्या० 'कीवो इति' क्लीबः कातरत्वेन लोचं केशलुञ्चनं न करोति, 'पडिमा इति' कायोत्सर्गं कुर्वन् लज्जते जलं शरीरमलं हस्तेनापनयति, 'सोवाहणो अ इति' पादत्राणसहितो हिंडति, बध्नाति कटिप्रदेशे पट्टकं चोलपट्टकं 'अकज्जे इति' कार्यं विना ॥

[१]गामं देसं च कुलं, ममाए पीढफलगपडिबद्धो ।
घरसरणेसु पवज्जइ विहरइ य सकिंचणो रित्तो ॥४॥

[२]नह दंतकेसरोमे जमेइ अत्थोलधोइणो अजओ ।
वाहेइ पलिअंकं अइरेगप्पमाणमच्छरइ ॥५॥

[३]सोवेइ य सव्वराइं नीसट्ठमचेयणो न वा झरइ ।
न पमज्जंतो पविसइ निसिहियावस्सियं न करेइ॥६॥

---

१ व्या० 'गामं इति' ग्रामे देशे अथ च कुले 'ममाए इति' ममतया विचरति, एतानि मदीयानीति ममत्ववान् पीठफलकेषु प्रतिबद्धः वर्षाकालं विनापि शेषकाले तद्रक्षक इत्यर्थः 'घरसरणेसु इति' गृहाणां पुनर्नवीनकरणे प्रसज्यति प्रसङ्गं करोति चिन्ताकारको भवतीत्यर्थः, विहरति विहारं करोति 'सकिंचणोत्ति' सुवर्णादिद्रव्यसहितः सन् अहं रिक्तोऽस्मि, द्रव्यरहितो निर्ग्रन्थोऽस्मीति लोकानामग्रे कथयति ॥

२ व्या० 'नह इति' नखा दन्ताः केशा मस्तकसम्बन्धिनः रोमाणि शरीरसम्बन्धीनि च, एतेषां द्वन्द्वः तानि 'जमे इति' भूषयति अत्थोलशब्देन बहुपानीयेन धावनं हस्तपादादीनां यस्यैतादृशः 'अजओत्ति' अयतनया युक्तः 'वाहेइयत्ति' वाहयति गृहस्थवदुपभुङ्क्ते पल्यङ्कं मञ्चकमतिरेकप्रमाणं प्रमाणातिरिक्तं संस्तारकोत्तरपट्टाधिकमास्तरति सुखशय्यां करोतीत्यर्थः ॥५॥

३ व्या० 'सोवइय इति' स्वपिति शयनं करोति सर्वस्यां रात्रौ रात्रिप्रहरचतुष्टयेऽपीत्यर्थः निसट्ठं निर्भरमचेतनश्चेतनारहितः काष्ठवत् शयनं करोतीत्यर्थः, 'न वा झरइत्ति' रात्रौ गुणनादिकं स्वाध्यायं न करोति, रात्रौ रजोहरणादिना भूमिमप्रमार्जयन्नुपाश्रये प्रविशति, नैषेधिकीं सामाचारीं प्रवेशसमये, निर्गमनसमये वावश्यिकीं न करोति ॥

[1]पायपहे न पमज्जइ जुगमायाए न सोहए इरियं ।
पुढवीदगअगणिमारुअ--वणस्सइतसेसु निरविक्खो ॥७
[2]सव्वं थोवं उवहिं न पेहए न य करेइ सज्झायं ।
सद्दकरो झंझकरो लहुओ गणभेयतत्तिल्लो ॥८॥
खित्ताईयं[3] भुंजइ कालाईयं तहेव अविदिन्नं ।
गिण्हइ अणुइयसूरे असणाई अहव उवगरणं ॥९॥
ठवणाकुले[4] न ठवेइ पासत्थेहिं च संगयं कुणइ ।
निच्चमवज्झाणरओ न य पेहपमज्जणासीलो ॥१०॥

---

१ व्या० 'पायपहे इति' पहेति पथि मार्गे व्रजन्, ग्रामसोऽम्न प्रविशन् निस्सरन् वा न पादौ चरणौ प्रमार्जयति, "युगमात्रायां" युगप्रमाणायां भूमौ इर्यां न शोधयति, पृथ्वी शब्देन पृथ्वीकायः, दगशब्देनाप्कायः अगणिशब्देन तेजस्कायः मारुतो वायुकायः वनस्पतिकायत्रसकायश्च, एतेषु षट्सु जीवनिकायेषु निरपेक्षोऽपेक्षारहितो विराधयन्न शङ्कते इत्यर्थः ॥

२ व्या० 'सव्वं इति' सर्वं स्तोकमप्युपधि मुखवस्त्रिकामात्रमपि न प्रेक्षते, न प्रतिलेखते, न च करोति स्वाध्यायं वाचनादिकं, रात्रौ शयनानन्तरं गाढं शब्दं करोतीति, झंझशब्देन कलहस्तं करोतीति, लघुको नतु गम्भीरो न गुणयुक्त', गणस्य संघाटकस्य भेदे भेदकरणे 'तत्तिल्लोत्ति' तत्परः ॥

३ व्या० 'खित्ताईयं इति' क्रोशद्वयादुपरिक्षेत्रादानीतमाहारं यदाहरेत्तत्क्षेत्रातीतं कालातीतमिति यदानीताहारं प्रहरत्रयानन्तरं भक्षयति, 'अणुइय सूरे इति अनुद्गते सूर्ये गृण्हाति, सूर्योदयात्प्रथममाहारं गृण्हाति, अशनादिकं चतुर्विधमाहारं, अथवोपकरणं वस्त्रादि, एवंविधः पार्श्वस्थादिः कथ्यते इत्यथः ॥

४ व्या० 'ठवणा इति' स्थापनाकुलानि वृद्धग्लानादीनामतीव भक्तिकराणि, तानि न स्थापयति न रक्षति, निष्कारणं तत्राहारार्थं गच्छतीत्यर्थः, च पुनः पार्श्वस्थैर्भ्रष्टाचारैः सार्द्धं संगतं मैत्र्यं करोति,

[1]रीयइ य दवदवाए मूढो परिभवइ तह य रायणिए।
परपरिवायं गिण्हइ निट्ठुरभासी विगहसीलो ॥११॥
विज्जं मंतं जोगं तेगिच्छं कुणइ भूइकम्मं च।
अक्खरनिमित्तजीवी आरंभपरिग्गहे रमइ ॥ १२ ॥
[३]कज्जेण विणा उग्गह--मणुजाणावेइ दिवसओ सुअइ।
अज्जियलाभं भुञ्जइ इत्थिनिसिज्जासु अभिरमइ ॥१३

नित्यं निरन्तरमपध्याने रतस्तत्परः न च प्रेक्ष्य दृष्ट्या विलोक्यवस्तुनो ग्रहणं प्रमार्जना रजोहरणादिकेन प्रमार्ज्य वस्तुनो भूमौ स्थापनं, तच्छीलस्तदाचरणस्वभावो नेत्यर्थः ॥

व्या० 'रीयइ य इति' गच्छति 'दवदवाए इति' सत्वरं मूर्खः सन् पराभवति 'तहय इति' तथा 'रायणिपत्ति' ज्ञानादिगुणरत्नैरधिका वृद्धास्तान्, तैः सह स्पर्द्धते इत्यर्थः, परेषां परिवादोऽवर्णवादस्तं गृण्हाति, निष्ठुरं कठिनं भाषते, इत्येवंशीलः, विकथा राजकथाद्यास्तासां शीलः स्वभावो यस्य सः ॥

व्या० 'विज्जं इति' विद्यां देवाधिष्ठितां, मंत्रं देवाधिष्ठितं योगमदृश्यीकरणादि, 'तेगिच्छं इति, रोगप्रतिक्रियां करोति, च पुनर्भूतिकर्मेति रक्षाद्यभिमंत्र्य गृहस्थेभ्यः समर्पयति, अक्षरशब्देन लेखकानामक्षरविद्याप्रदानं, निमित्तं शुभाशुभयोर्लग्नबलेन प्रकाशनं, तेन जीवतीत्येवंशीलः आरम्भः पृथिव्याद्युपमर्द्दः, परिग्रहोऽधिकोपकरणरक्षणं, तत्र रमते तत्रासक्त इत्यर्थः ॥

व्या० 'कज्जेण इति' कार्येण विना निरर्थकमित्यर्थः, अवग्रहं स्थित्यर्थमनुज्ञापयति, गृहस्थानां भूमिकां ज्ञापयित्वा मुञ्चतीत्यर्थः, दिवसे स्वपिति निद्रां करोति आर्यिकाया लाभं साध्वोलब्धमाहारं भुनक्ति, स्त्रीणां निषद्या आसनानि, तत्राभिरमते, स्त्रीणामुत्थानानन्तरं तत्कालमेव तत्र तिष्ठतीत्यर्थः ॥

[1]उच्चारे पासवणे खेले सिंघाणए अणाउत्तो ।
संथारगणवहीणं पडिक्कमइ सवासपाउरणो ॥ १४ ॥
[2]न करेइ पहे जइणं तलिआणं तह करेइ परिभोगं ।
चरइ अणुबद्धवासो स पक्खपरपक्खओमाणो ॥१५॥
[3]संजोअइ अ बहुअं इंगालसाधूमगं अणट्ठाए ।
भुञ्जइ रूवबलट्ठा न धरेइ अ पायपुंछणयं ॥१६॥
[4]अट्ठमछट्ठचउत्थं संवच्छरचाउमासपक्खेसु ।

व्या० 'उच्चारे इति' उच्चारो मलस्तत्र, प्रस्रवणं मूत्रं तत्र तत्परिष्ठापने इत्यर्थः, खेलशब्देन श्लेष्म तत्र 'सिंघाणएत्ति' नासिकामलेऽनायुक्तोऽवसावधानः, अयतनया तत्परिष्ठापक इत्यर्थः संस्तारकस्योपरि स्थित एव प्रतिक्रमणं करोति कीदृशः ? वासो वस्त्रं तस्य प्रावरणं प्रकर्षेण वेष्टनं, तेन सह वर्त्तमानः, अथवा स इति भिन्नं पदं वा अथवेत्यर्थः, संप्रावरण इति विशेषणम् ॥

व्या० 'न करेइ इति' न करोति पथि मार्गे यतनां 'तलियाणंति' पादतलरक्षकाणां पादत्राणभेदानां परिभोगमुपभोगं करोति, चरति गच्छति 'अणुबद्धवासे' वर्षाकालेऽपि विहारं करोति, स्वपक्षाणां साधूनां मध्ये परपक्षाणामन्यदर्शनिनां मध्येऽपमाने सति अयोग्यं विचारयतीत्यर्थः ॥

व्या० 'संजोअइ इति' संयोजयति भिन्नभिन्नस्थितानां द्रव्याणां आस्वादार्थं संयोगं करोतीत्यर्थः, अतिबहुकं भुंक्ते इंगाल शब्देन समीचीनं भक्तादि रागबुद्धया जेमति, 'साधूमगं इति' अनिष्टभक्तादिमुखविकारेण जेमति, 'अणट्ठाए इति' क्षुधावेदनीयवैयावृत्त्यादिकारणं विना 'भुंजइति' भोजनं करोति, किमर्थं ? रूपबलनिमित्तं इति 'न धरेइत्ति' न धारयति च पादप्रोंछनकम् ॥

व्या० 'अट्ठम इति' अष्टमं तपः षष्टं तपश्चतुर्थं तपश्च न करोति, कस्मिन् कस्मिन् दिने ? तदाह—सांवत्सरिके पर्वणि अष्टमं चातुर्मासिके षष्ठं, पक्षे पक्षदिवसे चतुर्दशीदिने चतुर्थं तपो,

[1]न करेइ सायबहुलो न य विहरइ मासकप्पेणं ॥१७॥
नीयं गिण्हइ[2] पिंडं एगागि अच्छए गिहत्थकहो ।
पावसुआणि अहिज्जइ अहिगारो लोगगहणम्मि ॥१८
[3]परिभवइ उग्गकारी सुद्धं मग्गं निगूहए बालो ।
विहरइ सायागुरुओ संजमविगलेसु खित्तेसु ॥ १९ ॥
उग्गा[4]इ गाइ हस्सइ असंवुडो सया करेइ कंदप्पं ।
गिहिकज्जचिंतगोवि य उसन्ने देही गिण्हइ वा॥२०॥

न करोति, कीदृशः सन्? सातेन बहुलः सुखशीलः सन्,न च विहरति विहारं न करोति, मासकल्पेन मासकल्पमर्यादया शेषकाले सत्यपि क्षेत्रेइत्यर्थः ॥

व्या० 'नीयं इति' नीयं नित्यमेतस्मिन गृहे एतावान् ग्राह्य इति नियतिपूर्वक पिण्डं गृण्हाति, एकाकी 'अच्छए इति' तिष्ठति, समुदाये न तिष्ठति, गृहस्थानां कथाप्रवृत्तेर्यत्र तां गृहिप्रवृत्तिं करोति, पापश्रुतानि ज्योतिर्वैदकानि 'अहिज्ज इति' अधीते पठतिं, अधिकारं करोति, लोकशब्देन लोकानां मनांसि, तेषां ग्रहणे रंजने वशीकरणे इति यावत् ॥

व्या० 'परिभवइत्ति' पराभवति, कान् ? उग्रकारिण उग्रविहारिणामुपद्रवं करोतीत्यर्थः, शुद्धं निर्दूषणं 'मग्गंति' मोक्षमार्ग निगूहयत्याच्छादयति बालो मूर्खः, 'विहरइत्ति' विचरति 'सायागुरुओत्ति' साते सौख्ये गुरुरेव गुरुकोऽर्थलिलम्पट इत्यर्थः, क्व विहरति ? संयमविकलेषु सुसाधुभिरनधिवासितेषु क्षेत्रेषु ॥

व्याख्या—उग्गाइत्ति उग्रतया महता शब्देन 'गाइत्ति' गायति, हसइत्ति' हसति, असंवृतो विकसितमुखः, 'सया इति' सदैव 'कंदप्पं इति' कन्दर्पोद्दीपकां प्रवृत्तिं करोति, अपि चेति समुच्चये, गृहिकार्यचिन्तकः, अवसन्नाय ददाति वस्त्रादि, गृण्हाति च तस्मात् ॥

धम्मकहाओ अहिज्जइ घराघरं भमइ परिकहंतो ।
अगणणाइपमाणेण य अइरित्तं वहइ उवगरणं ॥२१॥

बारस काइयत्ति य तिन्नि य उच्चारकालभूमीओ ।
अंतो बहिं च अहियासि अणहियासे न पडिलेहे ॥२२

गीयत्थं संविग्गं आयरियं मुअइ वलइ गच्छस्स ।
गुरुणो अणापुच्छा जं किंचि वि देइ गिण्हइ वा ॥२३

---

१ व्या० 'धम्मकहाओत्ति' धर्मकथा अधीते भणति, जनचित्तरञ्जनार्थमित्यर्थः, च पुनः परिकथयन धर्मकथां कथयन् गृहाद्गृहं भ्रमति गच्छति, गणनया साधूनां चतुर्द्दशसंख्यायाः साध्वीनां च पञ्चविंशतिसङ्ख्याया उपकरणानि, प्रमाणेन यादृशं कल्पते चोलपट्टकादीनां मानं तस्मादतिरिक्तमधिकं संख्यया प्रमाणेन चोपकरणं वहति धारयति ॥

२ व्या० 'बारस इति' द्वादशसङ्ख्याः 'काइयत्ति' लघुनीतियोग्याः स्थण्डिलभूमयः 'तिन्नियत्ति' तिस्र उच्चारकालग्रहणयोग्याः स्थण्डिलभूमयः, एवं सर्वा अपि सप्तविंशतिसङ्ख्याः स्थण्डिलभूमयः, उपाश्रयस्यान्तर्मध्येऽथ बहिश्च 'अहियासित्ति' यद्यध्यासितुं शक्यन्ते तदा दूरे योग्याः. 'अणहियासेत्ति' ईक्षितुं न शक्यते सा योग्या समीपवर्त्तिनी एतादृशीं भूमिकां न प्रतिलेखति नावलोकयति ॥

३ व्या० 'गीयत्थं इति' गीतार्थं सूत्रज्ञातारं 'संविग्गंति' मोक्षाभिलाषिणं, एतादृशं 'आयरियंति' स्वकीयं धर्माचार्यं 'मुअइत्ति' मुञ्चति निःकारणं त्यजति, 'वलइत्ति' वलति सम्मुखमुत्तरं ददाति, 'गच्छस्सत्ति' समुदायस्य शिक्षां ददतः सम्मुखं वदतीत्यर्थः, गुरूननापृच्छ्य गुर्वाज्ञां विनेत्यर्थः, यत्किञ्चिद्वस्तु वस्त्रादि ददाति परस्मै, वाऽथवा गृण्हाति स्वयं परस्मात् ॥

[१]गुरुपरिभोगं भुञ्जइ, सिज्जासंथारउवगरणजायं ।
कित्तियतुमंति भासइ अविणीओ गव्विओ लुद्धो॥२४॥
[२]गुरुपच्चक्खाणगिलाण--सेहबालाउलस्स गच्छस्स ।
न करेइ न य पुच्छइ निद्धम्मो लिंगमुवजीवी ॥२५॥
[३]पहगमणवसहिआहार--सयणथंडिल्लविहिपरिट्ठवणं ।
आयरइ नेव जाणइ, अज्जावट्टावणं चेव ॥ २६ ॥

---

१ व्या० 'गुरु इति' गुरुपरिभोग्यं गुरूणां परिभोग्यं भोक्तुं योग्यं स्वयं भुनक्ति, शय्या शयनभूमिः संस्तारकस्तृणादिमयः, उपकरणानि कल्पककम्बलप्रमुखाणि, तेषां जातः समुदायस्तं, गुरुभिर्भाषितः सन् 'कित्तियतुमंति' किं त्वमिति तुंकारेण भाषते, न तु भगवन् इति बहुमानपूर्वकं अविनीतः सन् गर्वितः सन् लुब्ध इति विषयादिषु लम्पटः सन एवं भाषते इत्यर्थः ॥

२ व्या० 'गुरु इति' गुरुप्रत्याख्याना अनशनादितपः कारकाः, ग्लाना रोगिणः, 'सेहत्ति' नवदीक्षिताः 'बालत्ति' लघुक्षुल्लकाः, एतैराकुलस्य भृतस्य गच्छस्य समुदायस्य न करोत्युपेक्षते वैयावृत्यादि स्वयं, नैव पृच्छति परं ज्ञातारमहं किं करोमीति 'निद्धम्मो इति' धर्मरहितः सन् लिंगस्य वेषमात्रस्योपजीवी उपजीवकः लिङ्गेनाजीविकाकारीत्यर्थः ॥

३ व्या० 'पहगमण इति' पथिमार्गे गमनं, 'वसहित्ति' उपाश्रयः स्थित्यर्थं, आहारशब्देनाहारग्रहणं शयनं; थण्डिलशब्देन स्थण्डिलशोधनं, एतेषां पदानां यो विधिस्तं, 'परिठ्ठवणंत्ति' अशुद्धभक्तादीनां परिष्ठापनं त्यजनं, एतत्सर्वं जानन्नपि निर्द्धर्मतया नाद्रियते, अथवा नैव जानाति, अज्जा शब्देन साध्वी, तस्याः वट्टावणं इति' लोकभाषया 'वर्त्ताववुं' तदपि न जानाति 'चेव इति निश्चयेन ॥

[1]च्छंदगमणउट्ठाण--सोअणो अप्पणेण चरणेण ।
समणगुणमुक्कजोगी बहुजीवखयंकरो भमइ ॥२७॥

[2]बच्छिव्व वायुपुन्नो परिभमइ जिणमयं अयाणंतो ।
थद्धो निव्विन्नाणो न य पिच्छइ किंचि अप्पसमं२८॥

[3]सच्छंदगमणउट्ठाण--सयणो भुञ्जई गिहीणं च ।
पासत्थाइठाणा हवंति एमाइया एए ॥ २९ ॥

इति उपदेशमालागाथोक्तलक्षणसर्वपार्श्वस्थाद्यसंयतवंदन एव संभाव्यते, नतु किञ्चिद्विराधकदेशपार्श्वस्थादिवन्दने । यदुक्तं-चैत्यवन्दनकुलके तदधिकारे—

---

१ व्या० 'सच्छंद इति' स्वेच्छया गमनमुत्थानमूर्ध्वीभवनं 'सोअणोत्ति' शयनं यस्यैतादृशः, अप्पणेणत्ति' आत्मना कल्पितेना चरणेनाचारेण गच्छति, श्रमणगुणा ज्ञानाद्यस्तेषां मुक्तो योगो व्यापारो येन सः, बहुजीवानां बहुप्राणिनां क्षयङ्करो विनाशकरः एतादृशो भ्रमति ॥

२ व्या० 'बच्छित्ति' बस्तिरिव वायुपूर्णः, यथा वायुपूर्णो बस्ति-दृतिरुत्फुल्लो दृश्यते, तथा गर्वेण भृतः सन् परिभ्रमणं करोति, जिनानां मतं रागादिरोगौषधमजानन् सन् स्तब्धोऽनम्रः सन निर्विज्ञानो ज्ञानरहितो न च प्रेक्षते किञ्चिल्लवलेशमपि आत्मना समं तुल्यं, एतावता सर्वानपि तृणसमान् गणयतीत्यर्थः ॥

३ व्या० 'सच्छंद इति' स्वेच्छया गमनोत्थानशयनः, अस्य विशेषणस्य पुनरुपादानं गुर्वाज्ञां विना गुणप्राप्तिर्न भवतीति ख्यापनार्थं, च पुनः 'भुंजइत्ति' भोजनं करोति गृहस्थानां मध्ये, पार्श्वस्थादीनां स्थानकानि, एते पूर्वोक्तानि पार्श्वस्थादीनां लक्षणानि भवन्तीत्यर्थः ॥

जे लोगुत्तमलिंगा लिंगिअ देहावि पुप्फतंबोलं।
आहाकम्मं सव्वं जलं फलं चेव सच्चित्तं ॥१॥
भुंजंति थीपसगं ववहारं गंथसंगहं भूसं।
एगागित्तब्भमणं सच्छंदं चिट्ठिअं वयणं ॥२॥
चेइअमठाइवासं वसहीसु वि निच्चमेव संठाणं।
गेअं निअचरणाणं अच्चावणं कणयकुसुमेहिं ॥३॥
तिविहं तिविहेणेअं मिच्छत्तं जेहिं वज्जिअं दूरं।
निच्छयओ ते सड्ढा अन्ने उण नामओ चेव ॥४॥

अत एव--

सेसा मिच्छदिट्ठी गिहिलिंगकुलिंगदव्वलिंगेहिं।

इत्यत्र द्रव्यलिङ्गिनोऽनन्तरोक्तलक्षणा एव ग्राह्याः। न तु सिज्जातरपिण्डादि कियद्दोषदूषितदेशपार्श्वस्थास्तेषां हि सातिचारचारित्रसद्भावेऽपि मिथ्यादृष्टित्वे प्रोच्यमाने महत्याशातना स्यात्। न च सातिचारचारित्रत्वं तेषामसिद्धं। यदुक्तं श्रीप्रवचनसारोद्धारसूत्रवृत्तौ, एतेषु पार्श्वस्थं सर्वथैवाचारित्रिणं केचिन्मन्यन्ते, तत्तु न युक्तं प्रतिभाति. यतो यद्येकान्तेन पार्श्वस्थोऽचारित्री स्यात् तदा सर्वतो देशतश्चेति विकल्पद्वयकल्पनमसङ्गतं स्यात् चारित्राभावस्योभयत्रापि तुल्यत्वात्। तस्माज्जायते पार्श्वस्थस्य सातिचारचारित्रसत्तापि। यतो निशीथचूर्णावपि

पासत्थो अच्छइ सुत्तपोरिसिं अत्थपोरिसिं वा न करेइ। दंसणाइआरेसु वट्टइ। चारित्ते न वट्टइ, अ-

इआरे वा न वज्जेइ । एवं सत्थो अच्छइ पासत्थोत्ति ”

एतावता चास्य न सर्वथा चारित्राभावोऽवसीयते । इति प्रवचनसारोद्धारवृत्तौ । अत्र च निशीथचूर्णौ—

चारित्ते न वट्टइ ।

। इति सर्वपार्श्वस्थग्रहणं ।

‘ अइआरे न वज्जइ ’

इति च देशपार्श्वस्थग्रहणं संभाव्यते । पार्श्वस्थं च केचिद्चारित्रिणं मन्यन्ते । इति वचनाद्वसन्नादीनां सुतरां चारित्रसद्भावो निर्णीयते । सर्वथा चारित्राभावे च तेषामागमोक्त कारणे जाते वंद्यत्वमपि तेषां न सङ्गच्छते । नहि क्वापि महत्यपि कारणे परतीर्थिकानां वंद्यत्वं सिद्धान्ते प्रतिपादितम् । तथा श्रीओघनिर्युक्तौ—

[1]एस गमो पंचण्हवि नीयाईणं गिलाणपडिअरणे ।
फासुअकरणनिकायणकहणपडिकामणा गमणं ॥१॥

इत्यत्र पार्श्वस्थादीनां ग्लानत्वे प्रतिजागरणं संविग्नविहारं प्रत्यभ्युत्थितत्वे सति साधुना सङ्घाटकरणं च ।

---

१ व्या० ‘एष गमः’ एष परिचरणविधिः ‘पंचण्हवि’ पञ्चानामपि, केषामत आह—‘ नियाईणं ’ आदिशब्दात् पासत्थोसण्णकुसीलसंसत्ताणं, ‘गिलाणपडिअरणे’त्ति ग्लानप्रतिचरणे एष विधिः ‘फासुअकरण’त्ति यदुत प्रासुकेन भक्तादिना प्रतिचरणं कार्यं. ‘निकायण’त्ति निकाचनं करोति, यदुत दृढीभूतेन त्वया यदहं ब्रवीमि तत्कर्त्तव्यम्. ‘कहण’त्ति धर्मकथाया, यद्वा ‘कहण’त्ति लोकस्य कथयति—किमस्य प्रव्रजितस्य शक्यतेऽशुद्धेन कर्त्तुम् ? ‘पडिकामण’त्ति यद्यसौ ग्लानः प्रतिक्रामति तस्मात्स्थानान्निवर्त्तत- इति यावत् ततः स्थानात् ‘गमण’त्ति तं ग्लानं गृहीत्वा गमनं करोति

नहि तेषां मिथ्यादृष्टित्वे सति संभवति इति । श्रीउपदेशमालायामपि—

[1]एगागी पासत्थो सच्छंदो ठाणवासि ओसन्नो ।
दुगमाईसंजोगा जह बहुश्रा तह गुरू हुंति ॥१॥

अत्र द्विकादियोगा गुरवो बहुदोषाः । पदानां वृद्ध्या दोषवृद्धेः ।

[2]गच्छगओ श्रणुओगी गुरुसेवी अनियश्रो गुणाउत्तो ।
संजोएण पयाणं संजमश्राराहगा भणिया ॥ १ ॥

अत्र गच्छगतो न एकाकी । अनुयोगी न पार्श्वस्थो गुरुसेवी न स्वच्छन्दः । अनियतवासी न नित्यवासी । आयुक्तो नाऽवसन्नः । अत्र च पदानां वृद्ध्या गुणवृद्धिः । अत्र गच्छगतत्वादिपदचतुष्कयोगेऽनुयोगित्वायुक्तत्वयोरन्यतरस्यायोगे पार्श्वस्थत्वस्यावसन्नत्वस्य वा भावेऽपि

---

१ व्याख्या—'एगागीत्ति' एकाकी धर्मबन्धवशिष्यरहितः १ पार्श्वस्थो ज्ञानादीनां पार्श्ववर्त्ती २ सच्छंदोत्ति' गुर्वाज्ञारहितः ३ स्थाने एकस्मिन्नेव स्थाने वसतीति स्थानवासी ४ 'ओसन्नो इति' प्रतिक्रमणादिक्रियाशिथिलः ५ एतेषां दोषाणां मध्ये द्व्यादिसंयोगाः, द्वौ दोषौ, त्रयो दोषाः, चत्वारो दोषाः, पञ्च दोषाः, एवं मिलिताः 'जह इति' यथा यस्मिन् पुरुषे बहवो भवन्ति 'तह इति' तथा स गुरुविराधको भवतीत्यर्थः ॥

२ व्या०—'गच्छ इति' गच्छगतो गच्छमध्ये तिष्ठति, अणुओगीत्ति' अनुयोगो ज्ञानाद्यासेवनं तत्रोद्यमवान्, गुरुसेवाकारकः, अनियतवासी मासकल्पादिना विहारकारी, आयुक्तः प्रतिक्रमणादिक्रियायां, एतेषां पञ्चपदानां संयोगेन संयमस्य चारित्रस्याराधका भणिताः, यत्रैते गुणा बहवः स विशेषेणाराधक इत्यर्थः ॥

संयमाराधकत्वं भणता, भणितमेव पार्श्वस्थादीनामपि चारित्रित्वम् । श्रीजीतकल्पभाष्ये—

तथा–पासत्थोसन्नाणं कुसील–संसत्तनीयवासीणं ।
जो कुणइ ममत्ताई परिवारनिमित्तहेउं च ॥१॥
तस्स इमं पच्छित्तं० ॥२॥

अह पुण साहम्मित्ता संजमहेउं च उज्जमिस्सति वा ।
कुलगणसंघगिलाणे तप्पिस्सति एव बुद्धी तु ॥३॥
एव ममत्तकरेंते परिवालण अह व तस्स वच्छल्लं ।
दढ आलंबणचित्तो सुज्झति सव्वत्थ साहू तु ॥४॥

इति श्रीजितकल्पस्य भाष्ये पार्श्वस्थादीनां ममत्वादि ममायं परिवारो भविष्यतीत्यादिकारणैरेव निषिद्धं । साधर्मिकत्वादिकारणैस्तु अनुमतमेव । यच्च श्रीमहानिशीथे सुमतिश्राद्धस्यानन्तसंसारित्वमुक्तं, तन्न कुशीलसंसर्गमात्रजनितं, किन्तु नागिलनाम्ना भ्रात्रा प्रतिबोधनेऽपि शुद्धचारित्रिसद्भावेऽपि तादृक् कुशीलनिद्धंधसपरिवारस्य सचित्तोदकपरिभोगादिबहुदोषदुष्टस्यैकान्तमिथ्यादृष्टेरभव्यस्य ज्येष्ठसाधोः पार्श्वे दीक्षाग्रहणेन, 'जारिसउ तुमं अबुद्धि उ तारिसो सोवि तित्थयरो' इति श्रीतीर्थकराशातनाकारित्वेन च वेदितव्यम् । किञ्च–यदि पार्श्वस्थादीनां लिङ्गधारित्वमेवेष्टं स्यात् । तदा "दगपाणं पुप्फफलमित्यादि" पूर्वोक्तोपदेशमालागाथापंचकेन लिंगमात्रधारिणां लक्षणानि ।

"बायालमेसणाओ" इत्यादिपूर्वोक्तगाथासमुदायेन च पार्श्वस्थादिस्थानादि कुतः पृथक् पृथक् प्रतिपादितानि ततोऽयमाशयः।

दगपाणं पुप्फफलं अणेसणिज्जं गिहत्थकिच्चाइं ।
अजया पडिसेवंती जइवेसविडंबगा नवरं ॥१॥"

इत्यादि लक्षणभूतो द्रव्यलिङ्गिनोऽसंयता एव । "बायालमेसणाओ न रक्खइ" इत्यादि पार्श्वस्थादिस्थानानि तु पुनः पुनः सेवमानः पश्चात्तापमुक्तो गुरोः पुरस्तदनालोचयन् शनैः शनैः कियता कालेनासंयतो भवति । न चायमर्थः स्वमनीषिकयोच्यते यदुक्तं श्रीकल्पेऽपि तृतीयखण्डे—

एसणदोसे सीअइ अणाणुतावी न चेव विअडेइ ।
नेव य करेइ सोधिं न य विरमइ कालओ भस्से॥१॥

अत्र वृत्तिः एषणादोषेषु सीदति । तद्दोषदुष्टं भक्तपानं गृण्हातीत्यर्थः, पुरः कर्मादिदोषदुष्टाहारग्रहणेऽपि न पश्चात्तापवान् । न चाशुद्धाहारग्रहणाद्विरमति । न विकटयति गुरूणां पुरतः स्वदोषं प्रकाशयति । विकटयति वा गुरुदत्तं प्रायश्चित्तं न करोति । एवं कुर्वन् कियतामपि कालेन चारित्रात् परिभ्रश्येदिति । ततो आवश्यके—

[१]गुणाहिए वंदणयं छउमत्थो गुणागुणे अयाणंतो ।
वंदिज्जा गुणहीणं गुणाहियं वावि वंदावे ॥१॥

व्या० इहोत्सर्गतः गुणाधिके साधौ वन्दनं कर्तव्यमिति वाक्यशेषः, अयं चार्थः श्रमणं वन्देतेत्यादिग्रन्थात्सिद्धः, गुणहीने तु प्रतिषेधः पश्चानां कृतिकर्मेत्यादिग्रन्थाद् , इदश्च गुणाधिकत्वं गुणहीनत्वं च तत्त्वतो दुर्विज्ञेयम्, अतश्छद्मस्थस्तत्त्वतो गुणागुणान् आत्मान्तरवर्तिनः ' अजानन् ' अनवगच्छन् किं कुर्यात् ? वन्देत वा गुणहीनं कश्चित्, गुणाधिकं चापि वन्दापयेत् ॥

इत्यावश्यकवचनप्रामाण्यात् कालोचितयतनया यतमाना यतयो गुणाधिकत्वात् श्राद्धानां वन्द्या एव । ननु न वयं सर्वथा साधूनामभावं वदामः । किन्तु मा पार्श्वस्थादयोऽभूवन् मा तद्वन्दनदोषश्चाभूत्, इति न वन्दामहे । तर्हि जातं युष्माकमप्याषाढाचार्यशिष्यवदव्यक्तनिह्नवत्वं । यथा च पार्श्वस्थादिवन्दनदोषात् भीयते । तथा—

माणे १ अविणय २ खिंसा ३ नीअगोअं ४ अबोहि ५ भववुड्ढी ६ अनमंते छद्दोसा ॥

इति साध्ववन्दनजनिताबोध्यादिदोषेभ्यः कस्मान्न भीयते, ततो मोक्षार्थिन् ! सकलसङ्घप्रमाणीकृतं मार्गमवगणय्य साम्प्रतमेवास्मदादिदृष्टचरेणाग्राह्यनामधेयेन केनापि पुरुषापशब्देन साधूनामुपरि जातमत्सरेण निजकुमतिपरिकल्पितेषु च वचनेषु मा कर्णं देहि । यतः— श्रीउपदेशमालायां,

निअगमइ विगप्पिअ चिंतिएण सच्छंदबुद्धिरइएण । कत्तो पारत्तहिअं कीरइ गुरुअणुवएसेणं ॥१॥

इति ॥ तथा बृहद्भाष्ये—

---

१ व्याख्या—'नियगमइ इति' निजकमत्या स्वकीयबुद्ध्या विकल्पितं स्थूलावलोकनं सूक्ष्मावलोकनं, तेन स्वकीयमतिकल्पनयेत्यर्थः, स्वच्छंदबुद्धिरचितेन स्वतन्त्रमतिचेष्टितेनेत्यर्थः । 'कत्तो' इति कुतः 'पारत्त' परत्र परे लोके हितमात्मनो हितं 'कीरइ' इति क्रियते ? गुरुर्वनुपदेशात उपदेशाऽयोग्येन गुरुकर्मणेति भावः, स्वेच्छाचारिणः परत्र हितं न प्राप्नुवन्तीत्यर्थः

संसिज्जइ निअकिरिआ दूसिज्जइ सयलसंघववहारो
कत्तो इत्तो वि पराविमाणणा हंदि संघस्स ॥१॥
उप्पन्नसंसया जे सम्मं पुछंति नेव गीअत्थे ।
चुक्कंति सुद्धमग्गा ते पल्लवगाहि पंडिच्चा ॥२॥
जो मोहकलुसिअ-मणो, कुणइ अदोसे त्ति दोससंकप्पं
सो अप्पाणं वंचइ पेआवमगोवणिसुउव्व ॥ ३ ॥
अवसउणकप्पणाए सुंदरसउणो (वि) असुंदरं फलइ ।
इअ सुंदरावि किरिआ असुहफला मलिणहिअयस्स ॥

इति । न च शासने केषांचिद्दोषान् दृष्ट्वा सर्वेषां सदोषत्वमारोपयितुं युक्तं, यतो बृहद्भाष्ये—

जो जिणसंघं हीलइ संघावइवस्स दुक्कयं दट्ठुं ।
सव्वजणहीलणिज्जो भवे भवे होइ सो जीवो ॥ १ ॥
जइ कम्मवसा केई असुहं सेवंति किमिह संघस्स ।
विट्टालिज्जइ गंगा कयाइ किं कागसबरेहिं ॥२॥
जो पुण संताऽसंते दोसे गोवेइ समणसंघस्स ।
विमलजसकित्तिकलिओ सो पावइ निव्वुइं तुरिअं ॥३॥
जह कणरक्खणहेउं रक्खिज्जइ जत्तओ पलालंपि ।
सासणमालिन्नभया । तहा कुसीलंपि गोविज्जा ॥ ८ ॥

इति । तथा—ननु पार्श्वस्थादीनां वंद्यत्वे, कथं पासत्थो ओसन्नो इत्यादिवाक्यैः सह न विरोधः, उच्यते—

सर्वदेशपार्श्वस्थादीनामुक्तयुक्त्या वन्द्यत्वमवन्द्यत्वं चाऽस्ति । आगमवाक्यानि च नयवाक्यप्रमाणवाक्यत्वेन द्विधाऽपि भवति । यतः श्रीउपदेशमालायां—

नाणाहिओ वरतरं हीणो वि हु पवयणं पभावंतो ।
नयदुक्करं करिंतो सुट्ठु वि अप्पागमो पुरिसो ॥१॥

श्री आवश्यके—

नाणं मुणेह नाणं गुणेह नाणेण कुणउ किच्चाइं ।
भवसंसारसमुद्दं नाणी नाणेण उत्तरइ ॥ १ ॥

तथा भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णके—

दंसणभट्ठो भट्ठो न हु भट्ठो होइ चरणपब्भट्ठो ।
सिज्झंति चरणरहिआ दंसणरहिआ न सिज्झंति ॥१॥

तथा श्रीआवश्यके—

दसारसीहस्स य सेणिअस्स पेढालपुत्तस्स य सच्चइस्स अणुत्तरा दंसणसंपया तया विणा चरित्तेणऽहरं गइं गया

तथा श्री आवश्यके—

---

१ व्याख्या--'नाणाहिओ इति' ज्ञानेनाधिकः पूर्णो ज्ञानाधिको वरतरं श्रेष्ठः, हीनोऽपि चारित्रक्रियाहीनोऽपि हु निश्चितं प्रवचनं जिनशासनं प्रभावयन्, एतादृशः क्रियाहीनोऽपि ज्ञानी श्रेष्ठ इत्यर्थः, 'न य इति' न च श्रेष्ठो दुष्करं मासक्षपणादि कुर्वन् सम्यक्प्रकारेण 'अप्पागमोत्ति' अल्पश्रुतः पुरुषः क्रियावानपि ज्ञानहीनो न श्रेष्ठ इत्यर्थः ॥

इय नाणचरणरहिओ सम्मद्दिट्ठी वि मुक्खदेसं तु ।
पाउणइ नेव नाणाइसंजुओ चेव पाउणइ ॥ १ ॥

तथा श्रीउत्तराध्ययने—

नाणं च दंसणं चेव चरित्तं च तवो तहा ।
एस मग्गुत्ति पण्णत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं ॥ १ ॥

श्री आवश्यके—

नाणं पयासगं सोहओ तवो संजमो अ गुत्तिकरो ।
तिण्हं पि समाओगे मुक्खो जिणसासणे भणिओ ॥ २ ॥

इत्यादिषु क्वचित्केवलस्य ज्ञानस्य क्वचिद्दर्शनस्य क्वचिच्चारित्रस्य क्वचित्तत्त्रयस्य क्वचिज्ज्ञानदर्शनचारित्रतपसां च मोक्षसाधनत्वं प्रतिपाद्यते । न चात्र कश्चिद्विरोधः, न चापि मतिमतामत्र मतिमोहः कर्त्तुं युक्तः । आगमे हि कानिचित् एकैकांशग्राहकतया नयवाक्यानि भवन्ति, कानिचिच्च संपूर्णार्थग्राहकतया प्रमाणवाक्यानि, अत एवातिनिपुणमतीनामेव भगवदाज्ञा अवगन्तुं शक्या । यदावश्यके—

झाइज्जा निरवज्जं जिणाण आणं जगप्पईवाणं ।
अनिउणजणदुन्नेयं नयभंगपमाणगमगहणं ॥ १ ॥
तथा— पुव्वावरेण परिभाविऊण सुत्तं पयासिअव्वंति
जं वयणपारतंतं एअं धम्मत्थिणो लिङ्गं ॥ १ ॥

ततश्च पार्श्वस्थादीनां क्वचिदवन्द्यत्वमेव प्रतिपाद्यते ।

क्वचिच्चावश्यकजीतकल्पादौ कारणे साधून् श्राद्धांश्चा-श्रित्य वंद्यत्वम् । जीवानुशासनग्रन्थादौ तु--

किं च जइसावयाणं नमणं नो सम्मयं भवे एअं ।
पासत्थाईआणं ता कह उवएसमालाए ॥ १ ॥
सिरिधम्मदासगणिणा न वारिअं वारिअं च अन्नेसिं ।
परतित्थिआणपणमणइच्चाईवयणओ पयडं ॥ २ ॥
संघेण पुणो बाहिं जो विहिओ हुज्ज सो उ नो वंदे ।
पासत्थाई सड्ढाण सव्वहा एस परमत्थो ॥ ३ ॥

इत्यादि युक्त्या श्राद्धानाश्रित्य निष्कारणेऽपि वन्द्यत्वम् । क्वचिच्चासंयतत्वं क्वचिच्च चारित्रित्वं प्रतिपाद्यते, तदेषां सर्वेषां वाक्यानामयं भावो बहुश्रुतैरभिधीयते । सर्वपार्श्वस्थसर्वावसन्नयथाच्छन्दा बहुदोषत्वेनावन्द्या भवन्तु । देशपार्श्वस्थादयस्तु तादृगपरशुद्धचारित्र्यभावे प्रागुक्तयुक्तिभिश्चारित्रसत्तायाः प्रतिपादितत्वेन बकुशकुशीलादिलक्षणान्तःपातित्वेन च प्रागुक्तज्ञानग्रहणादिकारणैश्च वन्द्या एव । उक्तमपि-

पलए महागुणाणं हवंति सेवारिहा लहु गुणा वि ।
अत्थमिए दिणनाहे अहिलसइ जणो पईवंपि ॥१॥
गुणगणरहिओ अगुरू दट्ठव्वो मूलगुणविउत्तो जो ।
नयगुणमित्तविहीणित्थं चंडरुद्दो उदाहरणं ॥ २ ॥

तथा ३५५ गाथामाने श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रभाष्येऽप्युक्तं -किञ्च--

सम्मग्गगुणजुअं पत्तं पाविज्जए न दुसमाए ।
ईअरम्मि वि तो भत्ती कायव्वा तम्मि भणिअं च १
पलए महागुणाणं० ॥ २ ॥
भूरिगुणो विरलोच्चिअ इक्कगुणो वि हु जणो न सव्वत्थ
निद्दोसाण वि भद्दं पसंसिमो थेव दोसे वि ॥ ३ ॥
दंसणनाणचरित्तं तव० ॥ ४ ॥

इति । श्रीमहानिशीथेऽपि पूर्वगुरुयोग्यगुणौघमुक्त श्री वीराद्वर्षद्विसहस्रयनन्तरं षट्कायारम्भवर्ज्यैव गुरुर्वन्द्यतयोक्तः तदत्र रहस्यं यथा ।

"वंतुच्चारसुरागोमंससममिमंति" इत्यादिनाऽऽधाकर्मणो अतिनिन्द्यत्वप्रतिपादनेऽपि—

सोहंतो अइमेतह जइज्ज सव्वत्थपणगहाणीए ।
उस्सग्गववायविउ जह चरणगुणा न हायंति ॥ १ ॥

इत्यादिवचनात्पञ्चकपञ्चकपरिहान्यादियतनया देहयात्रार्थमाधाकर्म गृण्हानोऽपि शुद्ध एव । एवं "असुइठाणे पडिआ चंपगमाला न कीरइ सीसे" इत्यादि वाक्यैः पार्श्वस्थादीनां संगतिमात्रनिषेधेऽपि विशिष्टविशिष्टतरविशिष्टतमगुणसाध्वयोगे क्रमेण तेभ्यो हीनहीनतरहीनतमगुणानामपि साधूनां वन्दनादि सङ्गतमेव । यद्वा साम्प्रतकालोचितयतनया यतमाना यतयः प्रमादादिपारवश्येन किञ्चित् किञ्चित् विराधयन्तोऽपि मोक्षार्थमुद्यताः प्रागुक्तलक्षणबकुशकुशीलत्वं न व्यभिचरन्तीति तीर्थाधारत्वेन निर्ग्रन्थत्वेन च निर्विवादं वंदनीया एव । यतः—

अज्जवि तिन्नपइन्ना गरुअभरुव्वहणपच्चला लोए ।
दीसंति महापुरिसा अक्खंडिअ सीलपब्भारा ॥ १ ॥
अज्जवि तवसुसिअंगा तणुअकसाया जिइंदिआ धीरा ।
दीसंति जए जइणो वम्महहिअयं विआरंता ॥ २ ॥
अज्जवि वयसंपन्ना छज्जीवनिकायसंजमुज्जुत्ता ।
दीसंति तवस्सिगणा विगहविरत्ता य महासत्ता ॥३॥
अज्जवि दयखंतिपइट्ठिआइं तव नियमसीलकलिआइं
विरलाइं दूसमाए दीसंति सुसाहुरयणाइं ॥४॥
इयजाणिऊण एअं मा दोसं दूसमाइ दाऊणं ।
धम्मुज्जमं पमुच्चह अज्जवि धम्मो जए जयइ ॥५॥
ता तुलिअनिअबलेणं सत्तीइ जहागमं जयंताणं ।
संपुन्नच्चिअकिरिआ दुप्पसहं ताण साहूणं ॥६॥

न च प्रायः प्रतिगच्छं सामाचारीणां भेददर्शनान्न ज्ञायते का सत्या असत्या वेति ? तदकरणमेव वरमिति चिंतयितुं युक्तं । यदुक्तं श्रीभगवत्यां प्रथमशते द्वितीयोद्देशके—

अत्थिणं भंते ! समणा वि निग्गंथा, कंखामोहणीयं कम्मं वेअंति । हंता अत्थि । कहन्नं भंते ! समणा निग्गंथा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेअंति । गोयमा ! तेहिं २ नाणंतरेहिं दरिसणंतरेहिं । चरित्तंतरेहिं लिंगतरेहिं पवयणंतरेहिं पावयणंतरेहिं क-

प्पंतरेहिं मग्गंतरेहिं मयंतरेहिं भंगंतरेहिं नयंतरेहिं निअमंतरेहिं पमाणंतरेहिं संकिआ कंखिआ वितिगिच्छिआ भेअसमावन्ना एवं खलु समणा निग्गंथा कंखामोहणिज्जं कम्मं वेअंति ।

अत्र वृत्ता मग्गंतरेहिं मयंतरेहिं इति पदद्वयव्याख्या यथा-मार्गः पूर्वपुरुषक्रमागता सामाचारी तत्र केषांचित् द्विश्चैत्यवन्दना अनेकविधकायोत्सर्गकरणादिका आवश्यकसामाचारी तदन्येषां तु न तथेति किमत्र तत्त्वं। समाधिः गीतार्थाऽशठप्रवर्त्तिता असौ सर्वापि न विरुद्धा. आचरितलक्षणोपेतत्वात्, आचरितलक्षणं चेदम्—

असढेण समाइण्णं जं कत्थइ केणइ असावज्जं ।
न निवारिअमन्नेहिं बहुमणुमयमेअमायरिअं ॥१॥

तथा मतं समाने एवागमे आचार्याणामभिप्रायविशेषः। तत्र सिद्धसेनदिवाकरो मन्यते युगपत्केवलिनो ज्ञानं दर्शनं, चान्यथा तदावरणक्षयनिरर्थकता स्यात्। जिनभद्रगणिक्षमाश्रमणस्तुभिन्नसमये ज्ञानदर्शने. जीवस्वरूपत्वाद्यथा तदावरणक्षयोपशमे समानेऽपि क्रमेणैवमतिश्रुतोपयोगौ, न चैकतरोपयोगे इतरक्षयोपशमाभावः । तत्क्षयोपमस्योत्कृष्टतः षट्षष्टिसागरोपमप्रमाणत्वात् । अतः किं तत्त्वं । अत्र समाधिः यदेवमतमागमानुपाति, तदेव सत्यमिति मन्तव्यमितरत्पुनरुपेक्षणीयम् । यथा बहुश्रुतेन नैतदवसातुं शक्यते, तदेवं भावनीयम्, आचार्याणां संप्रदायादिदोषादयं भेदो मतः । जिनानां तु मत-

मेकमेवाविरुद्धं च, रागादिरहितत्वात् । आह च—

अणुवकयपराणुग्गह--परायणा जं जिणा जुगप्पवरा ।
जिअरागदोसमोहा य नण्णहा वाइणो तेण ॥१॥

इति । तस्माद् व्यवहारतो यतमाना यतयो धर्मार्थिना वन्द्या एव यतः श्रीउत्तराध्ययने—

धम्मज्जिअं च ववहारं बुद्धेहायरिअं सया ।
तमायरंतो ववहारं गरिहं नाभिगच्छइ ॥१॥

श्री आवश्यके—

ववहारो वि हु बलवं जं छउमत्थंपि वंदई अरिहा ।
जो होइ अणाभिन्नो जाणंतो धम्मयं एअं ॥१॥

जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहारनिच्छए मुअहा ।
ववहार नउच्छेए तित्थुच्छेओ हवइ जम्हा ॥२॥

व्यवहारनयमनुसरत एव हि क्रमेण निश्चयशुद्धिप्राप्त्या निःश्रेयसप्राप्तिर्भवति । अत्र साधुस्थापनाधिकारः संवेगरङ्गशालाग्रन्थतस्तद्गाथाभिरेव लिख्यते यथा ।

इत्थंतरम्मि सड्ढो आसधरो नाम भणइ दुविअड्ढो अ
भयवं जहुत्तसाहू न संति गुरुणो कहं ते य ॥१॥

पिंडविसुद्धिं न तहा कुणंति१ सक्कंपि नायरंति विहिं २
पासत्थाईहिं समं चयंति नालंबणनमणाइं३ ॥२॥

न परूवंति य सुद्धं४ न धरंति पमाणजुत्तमुवगरणं५ ।
थेवेसु वि रोगेसु जह तह सेवंति अववायं ६ । ॥३॥
इअ अट्ठारससीलंग--सहस्सधरणं विणा कहं समणा ।
हुंति गुरू तदभावे कह वा ते वंदणिज्जा य ॥४॥
भणिअं गुरुणा भद्दय ! मा साहूणं अभावमुल्लवसु ।
तदभावे धम्मस्सवि नूणमभावो तए इट्ठो ? ॥५॥
मिच्छत्तपउरयाए न नज्जई दाणिं देवनामंपि ।
किं पुण कालोचिअ सुमुणिविरहओ मग्गविन्नाणं ६॥
पिंडविसुद्धिं न कुणंति जं च वुत्तं तयपि हु न जुत्तं ।
निअसत्तिकालक्खित्ताणुसारओ तप्पवित्तीए ॥७॥
गिद्धिसढभावविरहा सुद्धी तदभावओ त्ति जं भणिअं।
सुद्धं गवेसमाणो आहाकम्मे त्ति सो सुद्धो ॥८॥
कह नज्जइ अगिद्धी घरधणसयणाइं सव्वचागाओ ।
तं जेसि नासिपुव्विं ते कह नणु इत्थ चागीओ ॥९॥
सुकरो इच्छाचागो अभावओ वि अ तुमं न किं कुणसि
दोणुद्धरणाइ खमा तुज्झ विनोदी सएलच्छो ॥१०॥
नेवायरंति सक्कंपि जं च भणिअं तयंपि निस्सारं ।
आवस्सयाइं किं ते न कुणंति जमेवमुल्लवसि ॥११॥
अहविगइचागमणु--खणमुस्सग्गं कप्पविहरणाईअं ।
सक्कंपि नायरंती कह नज्जइ सक्कमेअमहो ॥१२॥

सामत्थकालदोसा सक्कंपि कयाइ जायइ असक्कं ।
आयव्वयतुलणाए तदकरणे वि हु न तो दोसो॥१३॥
पासत्थाईसंगो नमणं च न संगयंति जं वयसि ।
तं पिहु मिच्छासिद्धंत-वयणओ तप्पवित्तीए ॥१४॥
नणु सिद्धंतनिसिद्धं आलवणाई वि किं पुणो नमणं ।
ओसन्नो पासत्थो इच्चाई भूरि भणणाओ ॥१५॥
सव्वमिमं ता सुत्ते वायनमोक्कारमाइ किं वुत्तं ।
परिआयपरिसपुरिसा द[दे]विक्खओ अ हतयं मूढा॥१६
जइ ते फुडं अजोगा ता--तन्नमणाइकीसाणुन्नायं ।
कारणमवि हु इहरा पासंडीणं पि तं होउ ॥१७॥
अह ते नो जिणलिंगे का तदविक्खा हु भावसारत्ते ।
अणुअत्तणा य भणिआ तेसिं पि हु जेण वुत्तमिमं॥१८॥
अग्गीयादाइन्ने खित्ते अन्नत्थ ठिइअभावम्मि ।
भावाणुवघायणुवत्त--णाए तेसिं तु वसिअव्वं ॥ १९ ॥
इहरा सपरुवघाओ उच्छोभाईहिं अत्तणो लहुआ ।
तेसिं च कम्मबंधो दुगंपि एअं अणिट्ठफलं ॥ २० ॥
ता दव्वओ उ तेसिं अरत्तदुट्ठेण कज्जमासज्ज ।
अणुवत्तणत्थमेसिं कायव्वं किंपि उ ण भावाओ॥२१॥
न परुवंति य सुद्धं एअं पि य दूसणं जहाजोगं ।
पन्नवणं चिअ वुत्तं इहरा दोसो त्ति जं भणिअं ॥ २२ ॥

आमे घडे निहित्तं जहा जलं तं घडं विणासेइ ।
इय सिद्धंतरहस्सं अप्पहारं विणासेइ ॥ २३ ॥
जोग्गाजोग्गमबुज्झिय धम्मरहस्सं कहेइ जो मूढो ।
संघस्स य पवयणस्स य धम्मस्स य पच्चणीओ सो॥२४
न पमाणजुत्तमुवहिं धरंति एअं पि तुच्छमाभाइ ।
असढोवदंसिअत्तेण तव्विहस्सुवहिनिवहस्स ॥ २५ ॥
इहरा बाहुठिअं पत्तं एअं तु पडलयच्छन्नं ।
पच्चा बंधकयं पुण बीअं मत्तं अगोअर उ ॥२६॥
एगंगि अ रयहरणं भवे न इण्हिं विसिट्ठमुणिणो वि ।
तो एत्थपयत्थम्मि य पुव्वमुणिणो च्चिअ पमाणं॥२७॥
सेवंति य अववायं दूसणमेअंपि घडइ नो सम्मं ।
तव्विहसंघयणाई विरहा सुत्तुत्ति उ तह य ॥ २८ ॥
सव्वत्थ संजमं संजमाओ अप्पाणमेव रक्खिज्जा ।
मुच्चइ अइवायाओ पुणो विसोही नयाविरई ॥२९॥
किअ-काहं अच्छित्तं अदुवाअहीअं तवोवहाणंमि
अउज्जमिस्सं ।
गणंव नीईइव सारइस्सं, सालंबसेवी समुवेइ मोक्खं३०
सीलंगाण विभावो नाउं सव्वन्नुवयणओ चेव ।
कह भणिअमन्नहेमं बकुसकुसीलेहिं जा तित्थं ॥३१॥
कालानुसारिकिरियारयत्ति चारित्तिणो पवुच्चंति ।

जह कप्परुक्खविरहे रुक्खा भन्नंति निंबा वि ॥३२॥
अह सम्म मा मुणियंमि मुणिम्मि नमणाइ कीरइ कहं ति
वभिचार दंसणाओ एअंपि न सुंदरं जम्हा ॥३३॥
छउमत्थसमयवज्जा ववहारनयाणुसारिणी सव्वा ।
तं ववहारं कुव्वं सुज्झइ सव्वो वि समईए ॥३४॥
जइ जिणमयं पवज्जह ता मा ववहार निच्छए मुअह
ववहारनउच्छेए तित्थुच्छेओ हवइ जम्हा ॥३५॥तथा--
धम्मज्जिअं च ववहारं बुद्धेहायरियं सया ।
तमायरंतो ववहारं गरिहं नाभिगच्छइ ॥ ३६ ॥
ता दूसमाए दोसं--विउं जत्थ जं पलोएज्जा ।
नाणे व दंसणे वा चरणे वा तमुववूहेज्जा ॥ ३७ ॥
किञ्च—

न विणा तित्थं निअंट्ठेहिं नातित्था य निअंठिआ ।
छक्कायसंजमो जाव ताव अणुसज्जणा दुण्हं ॥३८॥
तहा—जा संजमया जीवेसु ताव मूला य उत्तरगुणा य
इत्तरिअछेअसंजम--निग्गंथबउसा य पडिसेवी ॥३९॥
वीरपुरिसपरिहाणिं नाऊणं मंदधम्मिआ केइ ।
संविग्गजणं हीलंति ताण पयडा इमे दोसा ॥४०॥
संतगुणछायणा खलु परपरिवाओ अ होइ अलिअं च
धम्मे य अबहुमाणो साहुपउसे य संसारो ॥४१॥

जइ संपुन्नं एअं हविज्ज सिद्धो विना न वुच्छिज्जा
एअंपि नो मुणिज्जइ अहो महामोहमाहप्पं ॥४२॥
देवगुरुधम्मकिरिअं पुव्वं जुत्तो विआणिउं ते वि।
हीलिज्जंती जइणो हीही अकयनु(न्नु)ओ लोगो४३
इय नरवर! किविर-मबुहजीवदुविलसिअं निसामिहिसि
साहूहिं तो वि अपरो मोक्खोवाओ धुवं नत्थि॥४४॥
आगमतत्तं च नरिंद! मुणेसु गयरागदोसमोहाणं।
एगंतपरहिआणं जिणाण वयणं हिअं अमिअं ॥४५॥
दिट्ठंतजुत्तिहेऊ गंभीरमणेगभंगनयनिउणं।
आईमज्झवसाणे सुदूरपरिचत्तवभिचारं ॥४६॥
सिवपहरयणपईवं च कुमयपवणप्पणोल्लणासज्झं।
सज्झंव बहुविहाई सयतारताराानिवहजणणं॥ ४७ ॥
इय देवम्मि गुरुम्मि अ आगमविसए य जायबोहस्स
संकाइदोसरहिआ पडिवत्ती होइ सम्मत्तं ॥४८॥
एयम्मि पावियम्मि नत्थि तयं जं न पावियं होइ।
एयं मूलाउच्चिअमहल्लकल्लाणवल्लीओ ॥ ४९ ॥
अह नयणदत्तनरवइ--सुएहिं संजायपरमतोसेहिं।
भणियं भयवं! साहुप्प--सायओ पत्तरिद्धीणं ॥५०॥
अम्हाणं पि हु पुरओ को एसो साहु दूसणं कुणइ।
अहवा होअव्वं एत्थ पुव्वदुच्चरिअदोसेणं ॥ ५१ ॥

ता भयवं ! साहह को पुण एस पुव्वे भवम्मि हुंतोत्ति ।
मुणिवइणा जंपिअमेगमणसा भो ! निसामेह ॥५२॥
एसो सावत्थीए नयरीए गिहीवइस्स बंभस्स ।
पुत्तो नाम कुबेरोत्ति आसि पिउणो य सो दोसो ॥५३॥
संभूयगणिसमीवे पव्वइओ किच्चिराणि वि दिणाणि ।
विणयनएहिं वड्ढिअ पच्छापरिवडिअ उच्छाहो ॥५४॥
आवस्सयाइएसुं आलस्सं पइदिणंपि कुणमाणो ।
गुरुणा सासिज्जंतो साहूहियकोवमुवहइ ॥ ५५ ॥
एसिंपि साहुखलिअं पिक्खित्ता भणइ निययदुच्चरिअं
रक्खंति न थेवंपि हु परस्स पुण दिंति उवएसं ॥५६॥
बालगिलाणाईणं वेआवच्चं सया वि किच्चंति ।
गुरुणो वि परेसिं पन्नवंति न सयं पुण करंति ॥५७॥
एमाइ दूसणाइं वागरमाणो किलिट्ठमणवयणो ।
मरिउं असुरनिकाए किब्बिसिआसुं सुरिं पत्तो ॥५८॥
तत्तो चविऊं इण्हिं सावयभावं गओ वि एस इहं ।
पुव्वाणुवेह उच्चिअ पडुच्च मुणिणो इअ भणेइ ॥५९॥

इति । यदुक्तं कल्पभाष्ये—

उस्सुत्तभासगा जे ते दुक्करकारगावि सच्छंदा ।
ताणं न दंसणं पि हु कप्पइ कप्पे जओ भणिअं ॥१॥

जे जिणवयणुत्तिन्नं वयणं भासंति जे अ मन्नंति ।
सम्मद्दिट्ठीणं तद्दंसणं पि संसारवुड्ढिकरं ॥ २ ॥

इति साम्प्रतसमयोचितयतनया यतमानाः साधवः वंदनीया एव—

इति श्री सुविहितपूर्वाचार्य प्रणीता—

॥ गुरुतत्त्वसिद्धिः ॥

समाप्ता।

॥ प्रतिमागुणदोषविचारः ॥

॥ बिम्बपरीक्षाप्रकरणम् ॥

अतीताब्दशतं यत्स्याद् यच्च स्थापितमुत्तमैः ।
तद् व्यङ्गमपि पूज्यं स्याद् बिम्बं तन्निष्कलङ्कवत् ॥१॥
धातुलेप्यादिकं बिम्बं व्यङ्गं संस्कारमर्हति ।
काष्ठपाषाणनिष्पन्नं संस्कारार्हं पुनर्नहि ॥ २ ॥
गुलीऽंगुलीबाहुनासांऽह्णीणां भङ्गेऽप्यनुक्रमात् ।
शत्रुभीर्देशभङ्गश्च बन्धः कुलधनक्षयः ॥ ३ ॥
पीठयानपरीवार--ध्वंसे सति यथाक्रमम् ।
जनवाहनभृत्यानां नाशो भवति निश्चितम् ॥ ४ ॥
आरभ्यैकाङ्गुलाद् बिम्बं यावदेकादशाङ्गुलम् ।
गृहेषु पूजयेद् बिम्बं मूर्द्धपादजं (?) पुनः ॥ ५ ॥
प्रतिमाकाष्ठलेप्याश्म--दन्तचित्रायसां गृहे ।
मानाधिकपीरवार-- रहिता नैव पूज्यते ॥ ६ ॥
रौद्री निहन्ति कर्त्तारं अधिकाङ्गा तु शिल्पिनम् ।
नासा द्रव्यविनाशाय स्वल्पाऽऽस्या भोगवर्जिता ॥७॥
वक्रनासाऽतिदुःखाय ह्रस्वाङ्गा क्षयकारिणी ।
अनेत्रा नेत्रनाशाय दुर्भिक्षाय कृशोदरी ॥ ८ ॥

---

१ 'हस्ताङ्गुलि' इति पदं युज्यते ?

जायते प्रतिमा हीन--कटिराचार्यघातिनो ।
जङ्घाहीना भवेद् भ्रातृ--पुत्रमित्रविनाशिनो ॥ ९ ॥
पाणिपादविहीना तु धनक्षयविनाशिनो ।
चिरं पर्युषिता वा तु नार्थतो व्यायतस्ततः ॥ १० ॥
अर्थहृत् प्रतिमोत्ताना चिन्ताहेतुरधोमुखो ।
आधिप्रदा तिरश्चीना नीचोच्चस्था विदेशदा ॥११॥
अन्यायद्रव्यनिष्पन्ना परवास्तुदलोद्भवा ।
हीनाऽधिकाङ्गी प्रतिमा स्वपरोन्नतिनाशिनी ॥ १२ ॥
सर्वेषामपि धातूनां रत्नस्फटिकयोरपि ।
प्रवालस्य च बिम्बेषु चैत्यमानं यदृच्छया ॥ १३ ॥
ऊर्ध्वदृग्द्रव्यनाशाय तिर्यग् भोगस्य हानये ।
दुःखदा स्तब्धदृक् चाधोमुखो कुलविनाशिनी॥ १४ ॥
प्रतिमायां दवरका भवेयुश्चेत्कथञ्चन ।
सदृग्वर्णा न दुष्यन्ति वर्णास्त्वन्ये तु दूषिताः ॥१५॥

॥ इति बिम्बपरीक्षाप्रकरणम् ॥

॥ बिम्बपूजापरीक्षाप्रकरणम् ॥

पित्तलसुवन्नरुप्प--रयणाणं चंदकंतमाइणं ।
कुज्जाओ लक्खणजुआ सत्तंगुलजाव नो अहिआ ॥१॥

गिहिपडिमाणं पुरओ बलिवित्थारो न चेव कायव्वो ।
निच्चनवणं तिअसज्झ--मच्चणं भावओ कुज्जा ॥ २ ॥

लेवोवलदंतयकट्ठलोह--वत्थूणं पंचपडिमाओ ।
नो कुज्जा गिहपडिमा कुलधणनासाइआ जम्हा ॥ ३॥

वेउव्वियसासयं मंगलाओ आगासचित्तलिहिआओ ।
वंदंति सेसाओ जिणपडिमाओ जणकयाओ ॥ ४ ॥

दालिद्दं दोहग्गं कुज्जाइ कुसरीर कुगइ कुमइओ ।
अवमाण रोगसोगा न हुंती जिणबिंबकारीणं ॥ ५ ॥

समयवलिसुत्ताओ लेवोवलकट्ठदंतलोहाणं ।
परिवारमाणरहिअं घरम्मि नो पूअए बिंबं॥ ६ ॥

एकाङ्गुलं भवेत् श्रेष्ठं द्व्यङ्गुलं धननाशनम् ।
त्र्यङ्गुलेन भवेत्सिद्धिर्वर्जयेच्चतुरङ्गुलम् ॥ ७ ॥

पञ्चाङ्गुलं भवेद्वित्तं उद्वेगं तु षडङ्गुले ।
सप्ताङ्गुले तु गोवृद्धिस्त्यजेदष्टाङ्गुलं सदा ॥ ८ ॥

नवाङ्गुलं तु पुत्राय अर्थहानिर्दशाङ्गुले ।
एकादशाङ्गुलं बिम्बं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥ ९ ॥

नृपभयमत्यङ्गायां हीनाङ्गायामकल्पिता भर्त्तुः ।
कृशोदरायां क्षुद्भयमर्थविनाशः कृशाङ्गायां ॥ १० ॥

आयुः श्रीफलजयदा दारुमयी मृन्मयी तथा प्रतिमा
लोकहिताय मणिमयी सौवर्णी पुष्टिदा भवति ॥११॥
रजतमयी कीर्त्तिकरी प्रजावृद्धिं करोति ताम्रमयो।
भूलाभं तु महान्तं शैलप्रतिमाऽथवा लिङ्गम् ॥ ११ ॥
प्रासादतुर्यभागस्य समाना प्रतिमा मता ।
उत्तमायुः कृते सा तु कार्यैकेनाधिकाङ्गुला ॥ १३ ॥
अथवा स्वदशांशेन हीनस्याप्यधिकस्य च ।
कार्या प्रासादपादस्य शिल्पिभिः प्रतिमा मता?॥१४॥
सर्वेषामपि धातूनां रत्नस्फटिकयोरपि ।
प्रवालस्य च बिम्बेषु चैत्यमानं यदृच्छया ॥ १५ ॥
प्रासादगर्भगेहार्धे भित्तितः पञ्चधा कृते ।
यक्षाद्याः प्रथमे भागे देव्यः सर्वा द्वितीयके ॥ १६ ॥
विनायक स्कन्ध कृष्णानां प्रतिमाः स्युस्तृतीयके।
पद्मा तु तुर्यभागे च लिङ्गमीशां न पञ्चमे ? ॥१७॥

....

भागे तृतीयेऽर्हद्‌बिम्बं स्यात् द्वितीयेऽम्बिकादयः ॥१८॥
आसने वाहने चैव परिवारे तथा युधे ।
नखाभरणवस्त्रेषु व्यङ्गदोषो न जायते ॥ १९ ॥
नासामुखे तथा नेत्रे हृदये नाभिमण्डले ।

स्थानेषु व्यङ्गिताङ्गेषु प्रतिमां नैव पूजयेत् ॥ २० ॥
मण्डलं जालकं स्फोटं तिलकं शूलकं तथा ।
.. वज्रा तु सन्धिश्च महा-दोषः प्रकीर्त्तितः ॥ २१ ॥
वर्जयेदर्हतः पृष्ठिं पार्श्वं ब्रह्ममधुद्विषोः ।
चंडिकासूर्ययो दृष्टिं सर्वमेव च शूलिनः ॥ २२ ॥
विभज्य नवधा द्वारं तत्षट् भागानधस्त्यजेत् ।
ऊर्ध्वे द्वौ सप्तमं तद्वद् विभज्य स्थापयेद् दृशम् ॥२३॥
विश्वकर्ममते प्रोक्तं प्रतिमा दृष्टि लक्षणम् ।
द्वादशास्वाष्टिभिर्भागैरधः पक्षा द्वितीयके ? ॥ २४ ॥
मुक्त्वाऽष्टमं विभागं च यो भागः सप्तमः पुनः ।
तस्यापि सप्तमे भागे गर्जांशस्तत्र सम्भवेत् ॥ २५ ॥
प्रासादः प्रतिमा दृष्टिः नियोज्या तत्र शिल्पिभिः ।
अस्थाने निहिता सा तु सद्यो रिष्टाय जायते ॥ २६॥
दृष्ट्यायत्तं फलं सर्वं प्रोक्तं श्रीविश्वकर्मणा ।
तस्मात् सर्वं प्रयत्नेन तत्र यत्नो विधीयताम् ॥२७॥

॥ इति बिम्ब पूजा स्वरूपम् ॥

प्रतिमार्थं काष्ठपाषाणपरीक्षा

निर्मलेनारनालेन विष्टया श्रीफले न वा ।
विलिप्तेऽश्मनी काष्ठे वा प्रकटं मङ्गलं भवेत् ॥ १ ॥

मधुभस्म गुण व्योम—कपोतसदृशप्रभैः ।
माञ्जिष्टैररुणैः प्रोतिः कपिलैः शामलैरपि ॥ २ ॥

चित्रैश्च मण्डलैरेभिरन्तर्ज्ञेया यथा क्रमम् ।
खद्योतो वालुकारक्तभेकाम्बुगृहगोधिका ॥ ३ ॥

॥ इति काष्ठपाषाणपरीक्षा ॥

श्रीसत्यविजयस्मारकजैनग्रन्थमाला तरफथी—

प्रसिद्ध थयेला पुस्तको

अमारा भेटना पुस्तको मंगाववनारे ते ठेकाणे लखेली पोस्टनो टीकीट मोकलवी.

		पोस्टनी टीकीट.
१ संयमश्रेणिगर्भित महावीरस्तवन.	भेट	०-०-६
२ जम्बूद्वीपप्रमास सटीक.	भेट	०-०-६
३ उपधानविधि पत्राकारे.	भेट	०-२-०
४ अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका अवचूरि स.	भेट	०-१-०
५ पांडवचरित्र महाकाव्य पत्राकारे. रु. १-४-०		
६ षष्ठिशतकप्रकरण सटीक. मूल कर्ता नेमिचंद्र. टीकाकार महोपाध्याय गुणरत्नगणि.	भेट	०-६-०
७ सत्यहरिश्चन्द्रप्रबन्ध पत्राकारे.	भेट	०-३-०
८ जिनगुणस्तवनावली. सा० भेट.	गृहस्थ	०-४-०
९ पोसहविधि.	भेट	०-१-०
१० उपदेशरत्नकोषादि		०-०-६
११ अम्बडचरित्रपद्य		०-३-०

—: मलवानुं ठेकाणु :—

श्री सत्यविजय जैनग्रन्थमालाना ओ० सेक्रेटरी—

शा. मोहनलाल डाह्याभाइ

ठे. पांचकुवा कापडबजार पारसीचाल-अमदावाद.

Printed by Shah Vadilal Bapubhai at Jain Advocate Printing Press Ghee Kanta. AHMEDABAD.